मार्च - 2023

अखण्ड ज्योति

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

वर्ष–87 । अंक–3 । प्रति– ₹ 25 । ₹–300 वार्षिक

7 नए को खोजेंगे तो नया मिलेगा

18 स्वामी विवेकानंद का कालजयी चिंतन

24 कल्पनाशक्ति का सृजनात्मक उपयोग

40 भूत-प्रेतों की दुनिया

अखण्ड ज्योति 75 वर्ष पूर्व

मार्च–1948

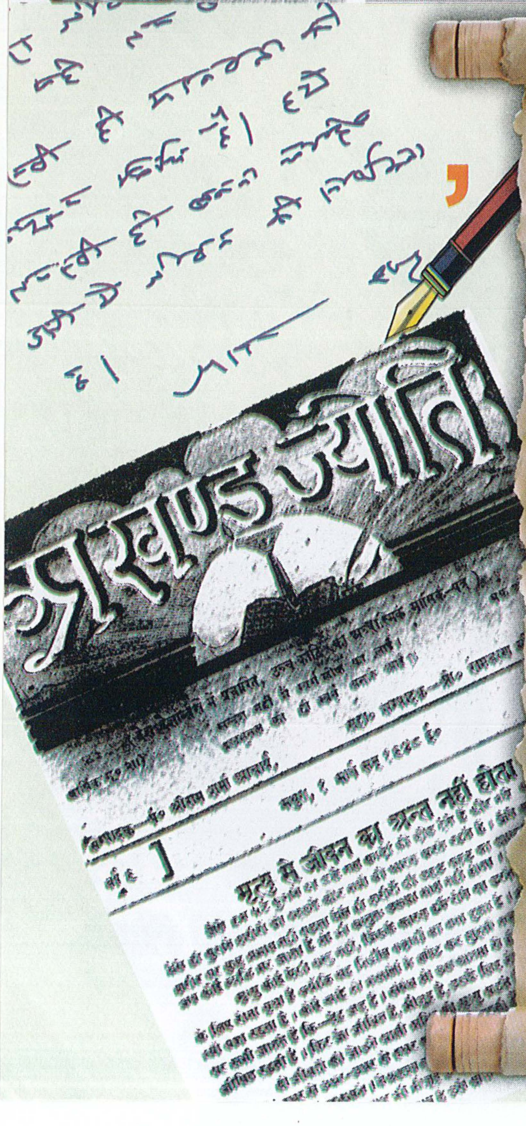

मृत्यु से जीवन का अंत नहीं होता

'जैसे हम फटे–पुराने या जले–गले कपड़ों को छोड़ देते हैं और नए कपड़े धारण करते हैं, वैसे ही आत्मा पुराने शरीरों को बदलती और नयों को धारण करती रहती है। जैसे कपड़ों के उलट– फेर से शरीर पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता, वैसे ही शरीरों की उलट–पलट का आत्मा पर असर नहीं होता। जब कोई व्यक्ति मर जाता है तो भी वस्तुतः उसका नाश नहीं होता।

मृत्यु कोई ऐसी वस्तु नहीं, जिसके कारण हमें रोने या डरने की आवश्यकता पड़े। शरीर के लिए रोना वृथा है, क्योंकि वह निर्जीव पदार्थों का बना हुआ है। मरने के बाद भी वह ज्यों–का–त्यों पड़ा रहता है। कोई चाहे तो मसालों में लपेटकर मुद्दतों तक अपने पास रखे रह सकता है। पर सभी जानते हैं कि देह जड़ है।संबंध तो उस आत्मा से होता है, जो शरीर छोड़ देने के बाद भी जीवित रहती है। फिर जो जीवित है, मौजूद है, उसके लिए रोने और शोक करने से क्या प्रयोजन ?

दो जीवनों को जोड़ने वाली ग्रंथि को मृत्यु कहते हैं। वह एक वाहन है, जिस पर चढ़कर आत्माएँ इधर–से–उधर, उधर–से–इधर आती–जाती रहती हैं। जिन्हें हम प्यार करते हैं, वे मृत्यु द्वारा हमसे छीने नहीं जा सकते। वे अदृश्य बन जाते हैं तो भी उनकी सत्ता में कोई अंतर नहीं आता। जो कल मौजूद था, वह आज भी मौजूद है। हम न दूसरों को मरा हुआ मानें न अपनी मृत्यु से डरें, क्योंकि मरना एक विश्राम मात्र है, उसे अंत नहीं कहा जा सकता।'

— पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।
उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

अखण्ड ज्योति

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम्।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः॥

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449 2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	87
अंक	:	03
मार्च	:	2023
फाल्गुन-चैत्र	:	2079-2080
प्रकाशन तिथि	:	01.02.2023

वार्षिक चंदा

भारत में	:	300/-
विदेश में	:	2800/-
आजीवन (बीसवर्षीय)		
भारत में	:	6000/-

परिवर्तन

जीवन में ठहराव निष्क्रियता का प्रतीक है और परिवर्तन विकास का आधार है। यदि जीवन में बदलाव न हो, परिवर्तन न हो तो न नए चिंतन का निर्माण हो पाता है, न नए पथ का और न नए अनुभव ही विनिर्मित हो पाते हैं। जीवन में प्रगति की परिभाषा परिवर्तन ही प्रतिष्ठित करता है और यदि हमें हमारे जीवन को प्रगतिशील बनाना हो तो उसमें अहर्निश परिवर्तन आवश्यक भी है और अवश्यंभावी भी।

जीवन में प्रगति की आकांक्षा रखने वाले परिवर्तनों से डरते नहीं, बदलावों से घबराते नहीं, बल्कि आगे बढ़कर उनका स्वागत करते हैं। अंतरिक्ष में सभी ग्रह-उपग्रह नित-निरंतर आगे बढ़ रहे हैं, चल रहे हैं। धरती यदि अपनी धुरी पर घूमना बंद कर दे, भगवान सूर्य यदि अपने पथ पर बढ़ना बंद कर दें तो जीवन, सृष्टि, समष्टि—सबका अंत सुनिश्चित है। बिना प्रगति का, गतिशीलता का, उत्थान का जीवन फिर विनाश, विध्वंस का जीवन बन जाता है।

इसीलिए परमात्मा की बनाई इस सृष्टि में ध्वंस और सृजन साथ-साथ चलते हैं। पुराने का टूटना, नए का बनना—दो अलग-अलग धाराएँ लगते हुए भी एकदूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं। रात के बिना दिन, दुःख के बिना सुख, उतार के बिना चढ़ाव का होना असंभव ही नहीं, अनुपयोगी भी है। परिवर्तनों का यह क्रम ही सृष्टि को भी संतुलन एवं सौंदर्य प्रदान करता है।

यही कारण है कि साधक परिवर्तनों से घबराते नहीं हैं, बल्कि उनका स्वागत करते हैं। चुनौतियाँ मनुष्य को जागरूक बनाती हैं। आपदाएँ व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं तो वहीं परिवर्तन की धाराएँ जीवन को विकसित एवं पोषित करती हैं। ❐

'नारी सशक्तीकरण' वर्ष

विषय सूची

- आवरण-1 1
- आवरण-2 2
- परिवर्तन 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  निद्रा की गुणवत्ता बनाए रखें 5
- **पर्व विशेष—नवसंवत्सर**
  नए को खोजेंगे तो नया मिलेगा 7
- अंत:करण की शक्ति है श्रद्धा 9
- अपरिग्रह का आनंद 10
- अनुपम संपदा है संतोष 12
- प्रकाशपुंज स्वामी रामतीर्थ 14
- आत्मबल 17
- स्वामी विवेकानंद का कालजयी चिंतन 18
- **परमपूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा—6**
  निश्छल-निर्मल और सघन आत्मीयता के धनी 20
- मनु, मनुष्य और मनुस्मृति 21
- कल्पनाशक्ति का सृजनात्मक उपयोग 24
- **चेतना की शिखर यात्रा—246**
  प्रज्ञावतार के लीला केंद्र 26
- संस्कृत भाषा की उपादेयता 31
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—167**
  दमे का यौगिक उपचार 33
- विशालकाय वृक्षों का अद्भुत संसार 37
- भूत-प्रेतों की दुनिया 40
- **युगगीता—274**
  शरीर संबंधी तप का वर्णन 43
- जनपरिष्कार हेतु विचार-क्रांति
  की आवश्यकता 46
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी (1)**
  समय की पुकार सुनें 49
- महिलाओं में स्वास्थ्य चेतना
  की जागरूकता 56
- **विश्वविद्यालय परिसर से—213**
  अविस्मरणीय रहा विश्वविद्यालय
  का दीक्षांत समारोह 58
- मौसम को प्रभावित करते हैं
  वायुमंडल के प्रदूषक 60
- **अपनों से अपनी बात**
  नवरात्र-साधना का मूल उद्देश्य 63
- शक्ति उद्घोष (कविता) 66
- आवरण—3 67
- आवरण—4 68

आवरण पृष्ठ परिचय

नारी शक्ति द्वारा जाग्रति संदेश

मार्च-अप्रैल, 2023 के पर्व-त्योहार

शुक्रवार	03 मार्च	आमलकी एकादशी	मंगलवार	04 अप्रैल	महावीर जयंती
सोमवार	06 मार्च	होलिका दहन	गुरुवार	06 अप्रैल	हनुमज्जयंती
मंगलवार	07 मार्च	होली, धूलिवंदन	गुरुवार	13 अप्रैल	वैशाखी
बुधवार	15 मार्च	शीतलाष्टमी	शुक्रवार	14 अप्रैल	आंबेडकर जयंती
शनिवार	18 मार्च	पापमोचनी एकादशी	रविवार	16 अप्रैल	वरूथिनी एकादशी
बुधवार	22 मार्च	नवसंवत्सरारंभ/नवरात्रारंभ	शनिवार	22 अप्रैल	शिवाजी/ परशुराम जयंती
सोमवार	27 मार्च	सूर्य षष्ठी	मंगलवार	25 अप्रैल	शंकराचार्य जयंती
गुरुवार	30 मार्च	श्रीराम नवमी	बुधवार	26 अप्रैल	सूर्य षष्ठी
शनिवार	01 अप्रैल	कामदा एकादशी	गुरुवार	27 अप्रैल	गंगा सप्तमी

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

निद्रा की गुणवत्ता बनाए रखें

निद्रा हमारे जीवन का, हमारी दैनंदिन दिनचर्या का एक अभिन्न अंग है। सतही तौर से देखने पर निद्रा का, रोज नींद लेने का कारण बड़ा स्वाभाविक जान पड़ता है। दिन भर की गतिविधियों के कारण जन्मी थकान को मिटाने के लिए, शरीर, मन एवं मस्तिष्क को तरोताजा करने के लिए एक बढ़िया नींद लेने की आवश्यकता भला किसे नहीं होती?

सामान्य रूप से देखने पर हमारी नित्यप्रति की नींद लेने के पीछे का कारण यही दिखाई पड़ता है, परंतु यदि इस महत्त्वपूर्ण जैविक प्रक्रिया का सूक्ष्मावलोकन करें तो ये मात्र इतना-सा ही विषय नहीं रह जाता।

प्रश्न उठता है कि यदि मात्र शरीर को तरोताजा करना नींद का उद्देश्य होता तो यह कार्य हमारा शरीर दिन में क्यों नहीं कर लेता है? रात्रि को जब शरीर पर विभिन्न तरह के खतरे, आघात, हमले होने की शंका होती है, तब हमारा शरीर ऐसा क्यों करता है? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके उत्तर वैज्ञानिक अनेक शोधों को करने के बाद भी प्राप्त नहीं कर पाए हैं।

यह भी एक रोचक तथ्य है कि इस संसार का लगभग प्रत्येक प्राणी सोता है। इनकी नींद लेने की अवधि में अंतर हो सकता है, परंतु इसको ग्रहण हर प्राणी करता है। चमगादड़ यदि दिन में 20 घंटे सोने में गुजारते हैं तो वहीं बड़े आकार वाले स्तनधारी जीव, यही कार्य 4 घंटे में करते हैं।

उदाहरण के तौर पर घोड़े कभी-कभी मात्र 3 ही घंटे सोने में गुजारते हैं। नींद लेने के समय में ये जो विविधता देखने को मिलती है, यह भी एक कारण है, जिसके कारण वैज्ञानिकों के लिए उनके प्रश्नों का समुचित समाधान ढूँढ़ना संभव नहीं हो पा रहा है।

नींद की अवधि में शरीर के विभिन्न अंगों पर भी जो प्रभाव पड़ते हैं, वे एक प्रजाति की तुलना में दूसरे में बहुत भिन्न हो जाते हैं, परंतु मस्तिष्क अकेला ऐसा अंग है, जो लगभग सभी प्राणियों में समान रूप से प्रभावित होता है।

यही कारण है कि आजकल अधिकतर वैज्ञानिक मस्तिष्क के ऊपर ही मुख्यतया शोध करते दिखाई पड़ते हैं। उदाहरण के तौर पर, यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि नींद के समय में हमारी जागरूकता गिरती है तथा नींद का अभाव या अनिद्रा की स्थिति में व्यक्ति की एकाग्रता नष्ट हो जाती है।

हमारी नींद का ज्यादातर हिस्सा स्लो-वेव नींद में जाता है, जिसे हम स्टेज 3 या डीप स्लीप के नाम से पुकारते हैं। इसी समय में ऐसे सारे कण या मोलक्यूल्स जो मस्तिष्कीय गतिविधियों को चलाने के लिए आवश्यक होते हैं, उनका पुनर्निर्माण संभव हो पाता है। यहाँ तक कि प्रोटीन, RNA, कोलेस्ट्रॉल इन सबकी भरपाई करने का कार्य भी तभी पूर्ण होता है, जब व्यक्ति डीप स्लीप या गहरी निद्रा की इस अवस्था में होता है।

इसके साथ ही हमारी स्मृतियों के समेकन का कार्य भी गहरी निद्रा में ही संपन्न हो पाता है। हमारी दिन भर की स्मृतियाँ कुछ ही अवधि के लिए हमारे मस्तिष्क में सुरक्षित रह पाती हैं। इनको दीर्घकालिक स्मृति का अंग बनाने के लिए इनका समेकन या कंसोलिडेशन अनिवार्य होता है। यह कार्य न किया जाए तो व्यक्ति को हर दिन फिर से

एक कोरी स्लेट की तरह से प्रारंभ करना पड़े। स्मृतियों के समेकन के इस कार्य को भी हमारा शरीर निद्रा की अवधि में ही पूर्ण करता है।

यही कारण है कि यदि हम सोने से पहले अपने मस्तिष्क को कोई निर्देश देकर सोते हैं तो वो वैसा संपन्न भी कर देता है। ऐसा उदाहरण अनेकों ने अनुभव किया होगा कि यदि कोई स्वयं को ऐसा कहकर सोए कि हमें सुबह 4 बजे उठना है तो यह लगभग सुनिश्चित है कि उतने ही बजे आँखें खुल जाती हैं। ल्यूबैक विश्वविद्यालय, जर्मनी में इस विषय पर किए गए शोधों में यह बात पूर्णतया सत्य भी पाई गई है।

इसके साथ ही एक और अद्भुत घटना भी नींद के समय में या सोने के समय में घटित होती है। वो यह कि जब स्मृतियाँ परिपक्व होती हैं तो उनके समेकन के समय न्यूरॉन और ज्यादा मजबूत हो जाते हैं।

साथ ही जहाँ न्यूरॉन परस्पर मिलते हैं, वे साइनेप्सेस भी और ज्यादा मजबूत हो जाते हैं। इस कार्य को संपन्न करने का समय भी हमारी नींद के समय में होता है। अमेरिका के विंसकोसिन विश्वविद्यालय के प्रो. टोनोनी एवं प्रो. चिरेली की शोधें इस तथ्य को और भी गंभीरता के साथ प्रमाणित करती हैं।

फिर नींद के समय में ही हम सपनों को भी देखते हैं। हमारी नींद विभिन्न चक्रों में संपन्न होती है और इनमें से प्रत्येक चक्र लगभग 90 मिनट देर तक चलता है। एक चक्र में लगभग तीन चरण नॉन-आरईएम नींद के होते हैं और एक चरण गहरी नींद या स्लो-वेव स्लीप का होता है।

गहरी नींद की अवस्था के समाप्त होने के बाद आँखें धीरे-धीरे ढलना शुरू होती हैं, शरीर की मांसपेशियों में शिथिलता आनी शुरू होती है और तब हम स्वप्न देखना शुरू करते हैं।

इस तरह नींद की अवस्था में मानवीय मन अनेकों घटनाक्रमों को जन्म देता है। यह जितनी ज्यादा गुणवत्तापूर्ण होगी, उतनी ही मानवीय प्रगति सुनिश्चित हो पाती है। वर्तमान समय में यह एक बड़ी चिंता का विषय है कि आज एक अच्छी एवं शांत निद्रा कम को ही नसीब हो पाती है।

इसे सुनिश्चित करने के लिए कई तरीके प्रभावी हो सकते हैं। उनमें से एक माध्यम दिन में ज्यादा-से-ज्यादा कार्य को करने का है। हमारे शरीर में एक जैव घड़ी कार्य करती है, जिसे चिकित्सकीय भाषा में सर्केडियन रिदम कहकर पुकारा जाता है। यदि ज्यादा-से-ज्यादा प्राकृतिक प्रकाश व्यक्ति को उपलब्ध होता है तो यह अधिक-से-अधिक और बेहतर-से-बेहतर नींद को सुनिश्चित कर पाता है। इसलिए यदि प्राकृतिक रोशनी में नित्यप्रति भ्रमण की आदत को अपनाया जाए तो शोध यह प्रमाणित करते हैं कि यह प्रतिदिन लगभग 2 घंटे की अतिरिक्त एवं गहरी नींद को प्रदान करने में सहायक बनता है।

इसके साथ ही कृत्रिम रोशनी जो लैपटॉप, फोन इत्यादि से निकलती है—उसको कम-से-कम उपयोग में लाने से भी नींद की गुणवत्ता बढ़ती है। नींद बेहतर करने के अन्य उपायों में दोपहर के बाद कॉफी का प्रयोग न करना, नींद की प्रक्रिया को निर्धारित समयों पर ही पूर्ण करना इत्यादि भी सम्मिलित हैं। इसके साथ ही जटामांसी, सर्पगंधा, ग्लाइसिन, लेवैंडर, वेलेरियम जड़ इत्यादि औषधियों का प्रयोग भी नींद की गुणवत्ता को बढ़ाता है और अनिद्रा की समस्या से मुक्त करता है।

इस तरह से देखें तो नींद हमारे जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा है और उसको अच्छे-से-अच्छा बनाए रखने के लिए हमें भरसक प्रयत्नों को करने की जरूरत है। इसकी गुणवत्ता को सुनिश्चित बनाए रखना भी आज की परिस्थितियों में एक अत्यंत आवश्यक कार्य कहा जा सकता है। ❑

नए को खोजेंगे तो नया मिलेगा

नवसंवत्सर की शुरुआत बीतते हुए वर्षों में एक नया अंक है अथवा हमारी अपनी चुनौतियों का एक नया प्रसंग है। बात अपनी-अपनी सोच की है और अपनी-अपनी दृष्टि की है। बीत रहे साल की शाम से नए साल की सुबह तक राग-रंग मनाने वाले बहुतेरे हैं। पहले से ही बेसुध, बेहोश लोग इन क्षणों में अपनी बेसुधी-बेहोशी को और भी गाढ़ा-गहरा करने के लिए नए-नए जतन करते हैं।

इनसे कोई उम्मीद करना व्यर्थ है। इनकी बेहोशी तो हमेशा कालदंड से टूटती है। इस नव-संवत्सर में भी कुछ ऐसा ही होगा, लेकिन सभी तो ऐसे नहीं हैं, अनेकों ऐसे भी हैं, जिनकी चेतना में चैतन्य का प्रकाश है। जो आने वाले घटनाक्रमों को पहचानने की और उनके अनुरूप स्वयं को तैयार करने की इच्छा रखते हैं।

इनसे कहना है कि नए साल की नई सुबह में उगने वाले सूरज के उजियारे की पहली किरण हमारा साहस जगाने आई है। आने वाली चुनौतियों के बारे में चेताने आई है। ये चुनौतियाँ बहुआयामी हैं। प्रकृति का परिदृश्य हो या फिर राष्ट्रीय राजनीति के दृश्य, सामाजिक-सांस्कृतिक सीमाएँ हों अथवा आर्थिक-व्यावसायिक हलचलें, धर्म का जगत् हो या आध्यात्मिकता का अंतर्गगन, कहीं का कोई भी कोना चुनौतियों से खाली नहीं है। प्रत्येक परिदृश्य में पुरुषार्थ की पुकार है। हर कहीं हमें पूरे जुझारूपन से जूझना है और जीतना भी है।

नवसंवत्सर का विचार न करें। नए का कैसे जन्म हो सकता है, इस दिशा में थोड़ी-सी बातें सोचें और थोड़े प्रयोग करें। एक तो पुराने को नहीं खोजें। खोजेंगे तो वह मिल जाएगा, क्योंकि वह है। हर अँगारे में दो बातें हैं। वह भी है, जो राख हो गया अँगारा—बुझ गया जो, जो अँगारा बुझ चुका है, जो हिस्सा राख हो गया, वह भी है और वह अँगारा भी अभी भीतर है, जो जल रहा है, जिंदा है, अभी है, अभी बुझा नहीं है। अगर राख खोजेंगे, राख मिल जाएगी। जिंदगी बड़ी अद्भुत है, उसमें खोजने वालों को सब मिल जाता है। वह आदमी जो खोजने जाता है, वह मिल ही जाता है। जो हमको मिल जाता है, उसे हमने कभी खोजा था, इसलिए मिल गया है।

तो पहली बात, पुराने को न खोजें। सुबह से उठकर थोड़ा एक प्रयोग करके देखें कि पुराने को हम न खोजें और सुबह उठकर नए की थोड़ी खोज करें। नया सब तरफ है, रोज है, प्रतिदिन है। नए का सम्मान करें, पुराने की अपेक्षा न करें। हम अपेक्षा करते हैं पुराने की। हम चाहते हैं कि जो कल हुआ, वह आज भी हो तो फिर आज पुराना हो जाएगा।

जो कभी नहीं हुआ, वह आज हो, इसके लिए हमारा खुला मन होना चाहिए। हो सकता है वह हमें दु:ख में ले जाए, लेकिन पुराने सुखों से नए दु:ख भी बेहतर होते हैं; क्योंकि दु:ख नए होते हैं। उनमें भी एक जिंदगी और एक रस होता है। कुछ तो नया हो जाए।

प्राणों को नए की उतनी तीव्र आकांक्षा है, लेकिन हम पुराने की अपेक्षा वाले लोग हैं। तीसरी बात कोई और हमारे लिए नया नहीं कर सकेगा। हमें स्वयं को ही करना पड़ेगा। ऐसा नहीं है कि हम पूरे वर्ष को नया कर लेंगे।

एक-एक कण, एक-एक क्षण को नया करेंगे तो अंततः पूरा दिन, पूरा वर्ष भी नया हो जाएगा।

एक-एक क्षण हमारे हाथ से निकला जा रहा है जैसे रेत का दाना गिरता है, रेत की घड़ी से। ऐसा एक-एक क्षण हमारे हाथ से गुजरा जाता है। एक क्षण को नया करने की फिकर करें, अगले क्षण का विचार मत करें। अगला क्षण जब आएगा, तब उसे नया कर लेंगे।

नए के इस मंदिर में थोड़ा प्रवेश, उस परमात्मा के निकट पहुँचा देता है, जो जीवन का मूलस्रोत है, मूलधारा है। वहाँ जो एक बार डूब जाता है, उस मूलस्रोत में, उसके लिए इस जगत् में फिर पुराना रह ही नहीं जाता। फिर उसके लिए मृत्यु जैसी चीज ही नहीं है; क्योंकि यहाँ पर कुछ मरता ही नहीं है। फिर उसके लिए बूढ़े जैसा कोई मामला ही नहीं। तब उसके लिए वृद्धावस्था भी एक नई अवस्था है, जो जवानी के बाद आती है। तब उसके लिए मृत्यु भी एक नया जन्म है, जो जन्म के बाद होता है। तब उसके लिए सब नूतन के द्वार खुलते चले जाते हैं।

अंतहीन नए के द्वार हैं, लेकिन हमने सब पुराना कर डाला है, उसमें नए के झूठे स्तंभ खड़े कर रखे हैं, लीप-पोतकर खड़े कर रखे हैं कि ये नए दिन, यह नया संवत्सर। यह सब बिलकुल धोखा है जो हम खड़ा किए हैं, लेकिन सुखद है; क्योंकि इतने पुराने को झेलने में सहयोगी हो जाता है और ऐसा लगता है कि चलो अब कुछ नया आया, अब कुछ नया होगा। ऐसा कभी नहीं होता है।

अब कितने मित्र नए संवत्सर पर एकदूसरे को शुभकामनाएँ देंगे। इन मित्रों को पिछले संवत्सर भी उन्होंने शुभकामनाएँ दी थीं। फिर हम शुभकामनाओं को बड़े सरल मन-से ग्रहण करेंगे और सरल मन-से उनको प्रदान भी करेंगे। जानते हुए कि यह सब व्यर्थ है, इसका कोई अर्थ नहीं है।

हम एक ही बात कह सकते हैं कि हमने इतने वर्ष पुराना कर डाले, तो नए वर्ष पर हम ख्याल रखें कि अब फिर वही न करें। जो अब तक किया है, इसको फिर वापस पुराना न कर डालें। इसे नया करने की कोशिश करें। अगर यह नया हो गया तो प्रतिदिन नया हो जाता है, प्रतिदिन नवसंवत्सर का आरंभ है। पुराना टिकता ही नहीं, बचता ही नहीं, सब बह जाता है, लेकिन हम ऐसे पकड़ते हैं पुराने को कि नए को होने के लिए अवकाश नहीं रह जाता है।

अगर हम अपने मन की खोज-बीन करें तो सब तरफ हम पुराने को इतनी जोर से पकड़े हुए हैं कि नए के लिए जगह कहाँ है ? नया आए कहाँ से हमारे घर में, हमारे चित्त में नए की किरण प्रवेश कहाँ से करे ? उधर अवकाश की जरूरत है, वहाँ जगह की जरूरत है, तभी वहाँ से नया आ सकता है। हमारे भीतर सदा नया पैदा हो सके, ऐसी परमात्मा से प्रार्थना करें।

नवसंवत्सर का संदेश यही है कि कोरा वाद-विवाद निरर्थक है। कल्पना नहीं, कर्म चाहिए। नकारात्मक निराशा नहीं, सकारात्मक साहस चाहिए। परस्पर की जाने वाली निंदा-चुगली नहीं, प्रोत्साहित करने वाली पारस्परिक प्रशंसा ही हमारे पुरुषार्थ को प्रज्वलित करेगी। विभाजित करने वाली, खंड-खंड में हम सबको बाँट देने वाली भेदबुद्धि की नहीं, बल्कि हमें, हम सबको अखंड, सशक्त, राष्ट्रव्रती, मानवतापरायण बनाने वाली विचारधारा और विचारशीलता चाहिए।

इस नवसंवत्सर के प्रत्येक क्षण हमें दिनकर की इन पंक्तियों को गुनगुनाते हुए आगे बढ़ना है—

वसुधा का नेता कौन हुआ
भूखंड विजेता कौन हुआ
अतुलित यशक्रेता कौन हुआ
युगधर्म प्रणेता कौन हुआ—
जिसने न कभी आराम किया,
विघ्नों में रहकर काम किया।

❑

अंतःकरण की शक्ति है श्रद्धा

मानवीय अंत:करण की शक्ति का नाम ही श्रद्धा है। स्थूलशरीर की शक्ति यदि क्रियाशीलता से सिद्ध होती है तो सूक्ष्मशरीर की शक्ति चिंतनशीलता है। कारणशरीर में, अंत:करण में शक्ति को मापने का आधार भाव-संवेदनाएँ हो जाती हैं। समग्रता से मूल्यांकन किया जाए तो जो भी मनुष्य कर पाता है, उसे कर पाने का मूल आधार—उसके अंत:करण में उठ रही उमंगें, भावनाएँ एवं प्रेरणाएँ ही होती हैं। अंत:करण में व्याप्त इस भावचेतना का घनीभूत हो जाना, सदुद्देश्य के प्रति नियोजित हो जाना श्रद्धा के आधार पर ही संभव हो पाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है—'**श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः**' अर्थात जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही बन जाता है। चिंतनशीलता और क्रियाशीलता, बुद्धि और शरीर तो वस्तुत: श्रद्धा के अनुगामी होते हैं। बिना भावनात्मक संबद्धता के किया जाने वाला कार्य बोझ लगता है तो वहीं श्रद्धायुक्त अंत:करण के प्रभाव में आकर किया जाने वाला कार्य सौभाग्य प्रतीत होता है।

श्रद्धा ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करने वाली शक्ति है। जैसी मनुष्य की श्रद्धा होती है, वैसा ही संकल्प प्रबल होता है और सर्वविदित है कि संकल्प की दिशा ही जीवन में परिणाम लेकर के आती है।

शास्त्रों में कहा गया है कि '**शिवो भूत्वा शिवं यजेत्**'—अर्थात स्वयं शिवरूप बनकर ही शिव की उपासना करनी चाहिए। श्रद्धा तो वही सच्ची मानी जा सकती है, जिसमें अभीष्ट के प्रति अभिन्न आत्मीयता की अनुभूति हो और वैसा ही बनने का स्वयं का प्रयास भी हो।

इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है—

भवानीशंकरौवन्दे
श्रद्धाविश्वास रूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति
सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्।

अर्थात मैं उन श्रद्धा-विश्वासरूपी भवानी और शंकर की वंदना करता हूँ, जिनके बिना अंत:करण में अवस्थित परमात्मसत्ता को सिद्धजन नहीं देख पाते। ❑

मनुष्य की छाया मनुष्य से बोली—''देखो! तुम जितने थे, उतने ही रहे, पर मैं तुमसे कितना गुना बढ़ गई हूँ।'' मनुष्य मुस्कराया और बोला—''सत्य और असत्य में यही तो अंतर है। सत्य जितना है, जैसा है, वैसा ही रहता है; जबकि असत्य छद्म और छल के सहारे घटता-बढ़ता रहता है।''

अपरिग्रह का आनंद

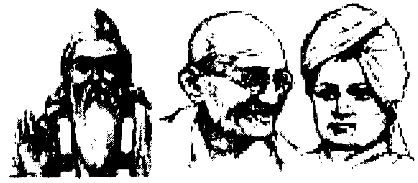

अपरिग्रह एक जीवनशैली है और हमें इसे अपने जीवन में क्रियान्वित करना चाहिए। इससे जीवन सुखी, संतुष्ट एवं आनंदित होता है। अपरिग्रह जैसे सद्‌गुण के अभाव में व्यक्ति अपने लक्ष्य से भटकते तो हैं ही; साथ ही वे अनेक समस्याओं से भी घिर जाते हैं।

इंद्रियाँ और विषयासक्ति बड़ी बलवान होती हैं। बड़े-बड़े विद्वान भी इनसे विचलित हो जाते हैं; क्योंकि ये बड़ी लुभावनी प्रतीत होती हैं। यही माया है। यही अविद्या है। यही अज्ञान है।

यह जीवन का मार्ग नहीं है, यह अमृत का पथ नहीं है। इंद्रियों का नेतृत्व स्वीकार करके जीवनयापन करना आत्मनाश के अलावा और कुछ नहीं है। वासना और तृष्णा का मार्ग कल्याण का मार्ग नहीं है; क्योंकि इनसे अंततोगत्वा दु:ख-ही-दु:ख मिलता है—आनंद नहीं मिलता है।

विषयों का चिंतन ही विष है। इंद्रियाँ वश में नहीं हैं, उच्छृंखल हैं। मनरूपी घोड़ा बेलगाम है और सारथीरूपी बुद्धि, कामनाओं के बहकावे में, उनके प्रलोभन में आ जाती है। इस स्थिति में जीवन-संग्राम में सफलता कैसे मिल सकती है? इनसे तो विनाश का क्रम चल पड़ता है। एक बार पतन शुरू हो जाता है तो फिर रुकने का नाम नहीं लेता है।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है—

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

अर्थात जैसा चिंतन करोगे, विचार करोगे, संकल्प करोगे, वैसे ही बनोगे। जिसका ध्यान करोगे, उसके पास पहुँच जाओगे या वह तुम्हारे पास पहुँच जाएगा। विषय-भोगों का ध्यान और धारणा करते ही उनकी संगति उपलब्ध होगी, भोग मिलेगा। विषयों का संग हुआ तो मन उनमें सुख खोजेगा और सुख मानकर उन्हें पकड़कर रखना चाहेगा। उनसे राग हो जाएगा और उन्हें अपना बनाए रखने की लालसा होगी।

कामनापूर्ति नहीं होने पर क्रोध आएगा और जिसके पास वह भोग-सामग्री होगी, उससे ईर्ष्या होने लगेगी। क्रोध होने लगेगा, क्रोध और हिंसा की आग हमें दग्ध करने लगेगी। भोग-वस्तु को पाने के लिए, उसे छीनकर केवल अपने लिए रख लेने के लिए मन उद्विग्न होता रहेगा।

असत् को सत् मान लेना, नकल को असल मान लेना सम्मोह है। ऐसा मनुष्य भ्रमों का शिकार हो जाता है और सुखरूपी मृगतृष्णा से चिपक जाना चाहता है। अपने कर्त्तव्य को, अपने वास्तविक लक्ष्य को वह भूल जाता है। वास्तविक आनंद प्राप्त नहीं कर पाता है और विस्मृत हो जाता है। इस विस्मृति का परिणाम बुद्धि को दिग्भ्रमित कर देता है। बुद्धि भ्रष्ट हुई नहीं कि सोच-विचार की शक्ति मृत हो जाती है। बुद्धि का नाश अर्थात फिर जीवन-पथ का ही नाश हो जाता है।

स्वामी विवेकानंद के अनुसार वैराग्य के बिना कोई भी अपने संपूर्ण अंत:करण को परोपकार में नहीं लगा सकता। महात्मा गांधी का भी विचार था कि जो व्यक्ति जरूरत से ज्यादा चीजों को इकट्ठा

करता है, वह एक तरह से हिंसा करता है। इसी प्रकार संत कबीर के अनुसार भी—

साईं इतना दीजिए जामे कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ साधु न भूखा जाय॥

इसके विपरीत आज जिंदगी में व्यक्ति मात्र भौतिक संसाधन जुटाने के लिए और अधिक-से-अधिक धनवान कहलाने के लिए झूठ-फरेब, विश्वासघात, धोखा, आतंक, नफरत, स्वार्थ और दूसरे अनेक अपराधों को प्रश्रय देता है। ये अपराध अपरिग्रह का पालन न करने की वजह से होते हैं।

अपरिग्रह की अवधारणा 'सादा जीवन-उच्च विचार' की जीवनशैली से जन्म लेती है। यह अपरिग्रह की प्रथम सीढ़ी है। बिना प्रथम सीढ़ी पर कदम रखे हम ऊपर नहीं चढ़ सकते। इसी सीढ़ी पर पैर रखकर ही हम आत्मोन्नति की ओर बढ़ते हैं। अपरिग्रह का पालन करने वाले व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक ऊर्जा में वृद्धि होती है।

आम जिंदगी में ज्यादातर लोग अपरिग्रह जैसी छोटी, परंतु महत्त्वपूर्ण बातों को नजरअंदाज कर देते हैं। वास्तव में ये महत्त्वपूर्ण बातें ही व्यक्ति, परिवार और समाज के लिए लाभप्रद होती हैं। महापुरुषों द्वारा दी गई शिक्षाएँ व्यक्ति के संस्कारों और संवेदना का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं।

अपरिग्रह का महत्त्व न समझने की वजह से मनुष्य जीवन भर भौतिक वस्तुओं को जोड़ने में लगा रहता है। भौतिक संसाधन महज जीने की राह को आसान भर कर देते हैं। यहाँ तक तो ठीक है, लेकिन जब व्यक्ति का मूल मकसद धन और भौतिक संसाधनों को इकट्ठा करना हो जाता है, तब जीने की राह आसान होने की जगह कठिन हो जाती है। इससे लोग अपना ही नुकसान नहीं करते, बल्कि देश-समाज और संस्कृति का भी जाने-अनजाने नुकसान करते हैं।

सादा जीवन-उच्च विचार की अवधारणा ही अपरिग्रह का मूल आधार है। हमें जितना आवश्यक है, उतना ही रखना चाहिए। अत्यधिक संग्रह की प्रवृत्ति से बचा जाना चाहिए। अपनी आवश्यकता से अधिक धन, वस्तु, समय आदि को सामाजिक कल्याण में समर्पित कर देना चाहिए। यही अपरिग्रह का आनंद है। ❑

शिष्य ने कहा—"गुरुदेव! पूजा-उपासना, तप-तितिक्षा का इतना महत्त्व क्यों है। इनको करने से क्यों मनुष्य को पुण्य बल की प्राप्ति होती है?" ऋषि ने उत्तर दिया—"वत्स! इस सृष्टि का नियंता इस सत्य को जानता है कि प्रकृति के गुणों से अभिभूत होकर मनुष्य सहज रूप से पतित होता रहता है। पतन मनुष्य के सहज क्रम में सम्मिलित है; जबकि उठना पराक्रम है। जो धारा के विपरीत जाने का साहस रखते हैं, वो ही सम्मान के अधिकारी भी बनते हैं।" तप-तितिक्षा व्यक्तित्व को परिष्कृत करते हैं और परिष्कृत व्यक्तित्व ही श्रेय-सम्मान को धारण करने में सक्षम भी होते हैं।

अनुपम संपदा है संतोष

संतोष अनुपम संपदा है। मनुष्य के असंतोष के कई कारण होते हैं। यह जीवन में मानसिक व्यग्रता लाकर बौद्धिक क्षमता को विक्षुब्ध कर देता है। इसके परिणामस्वरूप निराशा, उदासीनता, तनाव, द्वेष और मानसिक पीड़ा के साथ हम ऐसे दब जाते हैं कि हम कोई भी कार्य करने की अपनी क्षमता को खो देते हैं।

एक प्रसिद्ध मुहावरा है 'संतोषी सदा सुखी' अर्थात जो संतुष्ट है, वह सुखी है। संतोष मानव जीवन का शृंगार है। कहते हैं कि जो चेहरे से चमके वह संतुष्ट है, किंतु दुर्भाग्यवश संसार में कुछ ही लोग ऐसे हैं, जिन्होंने संतुष्टि से व्युत्पन्न मीठे फल का स्वाद चखा हो।

हम सारा जीवन और अधिक, और अधिक करते-करते गुजार देते हैं और अंततः असंतुष्ट होकर ही मृत्यु को प्राप्त करते हैं। नया जन्म प्राप्त करते ही हम वही दौड़-भाग फिर से शुरू कर देते हैं। यह सिलसिला जन्म-जन्मांतर तब तक चलता रहता है, जब तक कि हम संतोष और संतुष्टता का गुण धारण नहीं करते। जो सदा संतुष्ट रहता है, वह सदा प्रसन्न रहता है।

अधिकांश लोगों के मन में संतोष की अवधारणा के बारे में बहुत भ्रम की स्थिति होती है। जब तक इसे यथार्थ-विधि से समझा न जाए, तब तक यह एक भ्रम के समान ही महसूस होता है। संतोष को समझने के लिए आवश्यक है, इसके विपरीत पहलू को समझना।

विशेषज्ञों के अध्ययन के अनुसार संतोष तीन प्रकार का होता है। पहला ईश्वर से संतुष्ट अर्थात जितना जैसा और जब भी ईश्वर ने दिया, उसमें संतुष्ट रहना। दूसरा अपने आप से संतुष्ट अर्थात अपने आप को अपने गुण-अवगुणों के साथ स्वीकार करना और तीसरा, सर्वसंबंध और संपर्क से संतुष्ट अर्थात हर आत्मा को उनके गुण-अवगुणों के साथ स्वीकार करते हुए हरेक के अंदर किसी-न-किसी सकारात्मकता के भाव को खोजना।

संतोष प्रत्यक्ष रूप से प्रसन्नता देता है। इसी प्रसन्नता के आधार पर प्रत्यक्ष फल यह मिलता है कि ऐसे लोगों की स्वतः ही सभी के द्वारा प्रशंसा होती है। संतोष एक अद्वितीय सद्गुण है। इसकी निशानी प्रसन्नता है और उसका प्रत्यक्ष फल प्रशंसा। हमें स्वयं को देखना है कि हम सदा स्वयं संतुष्ट व प्रसन्न रहते हैं, यदि हाँ तो ऐसे व्यक्ति की प्रशंसा सभी लोग करेंगे।

असंतुष्ट लोगों के अंदर हवा में महल बनाने की आदत होती है; जबकि हकीकत में ऐसे लोग जीवन में कभी भी कुछ नहीं कर पाते हैं; क्योंकि वे पूरी तरह से इस बात को समझ ही नहीं पाते हैं कि जीवन में दोनों सिरों को मिलाने के लिए कड़ी मेहनत और मशक्कत अनिवार्य है। अतः यह कहना उचित ही होगा कि केवल सही समझ के साथ ही सही मंजिल तक पहुँचा जा सकता है।

हवा में बनाए हुए महल पल भर में अदृश्य हो जाते हैं, इसलिए हमें यह समझना चाहिए कि जैसे भोजन शरीर को सँभालता है, उसी प्रकार से मन भी खुशी में उपस्थित होता है। खुशी जैसी कोई उत्तम खुराक नहीं। जो संतुष्ट हैं, वे ही सदा खुश हैं। अल्फ्रेड नोबेल ने कहा है कि संतोष ही असली धन

है। वैसे हमें भी संतोषरूपी धन को छोड़कर अन्य प्रकार के धन को हासिल करने के पीछे अपना अमूल्य समयरूपी धन बरबाद नहीं करना चाहिए, क्योंकि संतोष के बराबर कोई खुशी नहीं है। संतोष के समकक्ष कुछ भी नहीं है अगर हम संतुष्ट हो जाएँ तो हमारे सारे कष्ट स्वत: समाप्त हो जाएँगे।

इसलिए हमें इस ओर अवश्य ही ध्यान देना चाहिए। असंतुष्ट रहना ही सभी समस्याओं की जड़ है, इसी से कष्ट आता है। संतोष जीवन का सार है। जीवन की गति-प्रगति संतोष के पहिये से होती है। अत: हमें सदा संतुष्ट ही रहने का प्रयास करना चाहिए। ❑

एक व्यक्ति एक महात्मा जी के पास आकर रोने-गिड़गिड़ाने लगा। महात्मा जी ने उससे उसकी व्यथा का कारण पूछा तो वह बोला—"महाराज! मैं बड़ा दरिद्र हूँ, यदि आपके आशीर्वाद से धन-दौलत मिल जाए तो मन को शांति मिले।" महात्मा बोले—"पुत्र! धन-दौलत से आज तक किसी के मन को शांति नहीं मिली तो तुझे कैसे मिल सकेगी?" बहुत समझाने पर भी जब वो नहीं माना तो महात्मा जी ने उसे एक पारसमणि दी और कहा—"इसे लोहे से छुलाकर वो उसे सोने में बदल सकता है, पर मणि उसके पास केवल एक दिन रहेगी।"

मणि पाकर वह व्यक्ति प्रसन्नता से बावला हो गया। उसने शहर के चक्कर लगाने प्रारंभ किए, ताकि ज्यादा-से-ज्यादा सस्ता लोहा इकट्ठा कर सके। पूरा दिन ऐसे ही बेवजह भागते-दौड़ते निकल गया। न लोहा इकट्ठा कर सका और न उसे सोने में बदल पाया। शाम को मणि वापस लौटानी पड़ी। मनुष्य को भी जीवन देवता के रूप में पारसमणि मिली हुई है और समय पर इसका उपयोग न कर पाने के कारण मनुष्य को भी उसी व्यक्ति की तरह पछताना पड़ता है, जो मणि हाथ में होते हुए भी दरिद्र ही रहा।

प्रकाशपुंज स्वामी रामतीर्थ

स्वामी रामतीर्थ का जन्म 22 अक्टूबर, 1873 को दीपावली के शुभ दिन, पंजाब के गुजरांवाला जिले के ग्राम मुराली में हुआ। उनके पिता पं0 हीरानंद गोस्वामी सारस्वत वंश से संबंध रखते थे। उस समय उनके दादा जी ने बालक की कुंडली तैयार करते ही बता दिया था कि जल्दी ही स्वयं इसका और इसकी माता का निधन हो जाएगा। यदि सुयोग से बालक बच गया तो वह एक महान संत बनेगा, जो विश्व में अपना और अपने देश तथा कुल का नाम रोशन करेगा।

भविष्यवाणी के अनुरूप दो माह बाद ही बालक की माता स्वर्ग सिधार गईं और बालक का लालन-पालन उसकी बुआ ने किया। इस बालक का नाम तीर्थ राम रखा गया। उनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव में रहते हुए ही हुई। 15 वर्ष की आयु में तीर्थ राम ने दसवीं की परीक्षा गुजरांवाला हाई स्कूल से उत्तीर्ण की। परीक्षा में वे प्रांत भर में सबसे अधिक अंक प्राप्त करने वाले छात्र रहे। गुजरांवाला में तीर्थ राम अपने पिता के एक मित्र धन्ना राम के घर पर रहा करते थे। इस कारण उनके प्रारंभिक जीवन पर उनकी बुआ और धन्ना राम का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

दसवीं कक्षा पास करने के बाद उन्होंने क्रिश्चियन कॉलेज, लाहौर में दाखिला लिया और यहीं से एफ0ए0 की परीक्षा पास की। उनकी पढ़ाई का खरचा उनको मिलने वाली छात्रवृत्ति से चलता था। एफ0ए0 में उन्होंने उर्दू और फारसी का अध्ययन किया। एक सहपाठी के ताने के कारण बी0ए0 में उन्होंने संस्कृत विषय ले लिया। सहपाठी का कहना था कि एक ब्राह्मण का बेटा होने के बावजूद वह हिंदी और संस्कृत नहीं जानता, यह कितने अनर्थ की बात है।

तीर्थ राम ने प्रतिज्ञा की कि वे बी0ए0 में संस्कृत की पढ़ाई करेंगे। संस्कृत में उन्हें विशेष परिश्रम करना पड़ा, फलस्वरूप अँगरेजी में चार अंक कम मिलने के कारण वे परीक्षा में असफल रहे और उनकी छात्रवृत्ति बंद हो गई। इस बीच घरवालों ने उनकी पत्नी को भी उनके पास भिजवा दिया।

इस अवसर पर उनके मौसा डॉ0 रघुनाथ ने उन्हें पच्चीस रुपये मासिक भेजना प्रारंभ कर दिया। बी0ए0 पास करने के बाद उन्हें पुन: 90 रुपये की छात्रवृत्ति मिलनी शुरू हो गई। उन्होंने गवर्नमेंट कॉलेज से पूरे पंजाब प्रांत में प्रथम रहते हुए गणित में एम0ए0 की उपाधि प्राप्त की। 21 वर्ष की आयु में ही वे गणित के प्राध्यापक नियुक्त हो गए।

तीर्थ राम बहुत कुशाग्र बुद्धिवाले मेधावी छात्र थे। एक बार अध्यापक बच्चों को पढ़ा रहे थे। बच्चों का सामान्य ज्ञान परखने के लिए उन्होंने ब्लैकबोर्ड पर एक सीधी रेखा खींची और कहा— "क्या आप में से कोई इस रेखा को छुए बिना छोटी कर सकता है।" सभी बच्चे निरुत्तर होकर चुपचाप बैठे रहे। उनका मत था कि रेखा को छुए बिना छोटा करना असंभव कार्य है।

इतने में तीर्थ राम सामने आए और कहा मैं अवश्य ही यह कार्य कर सकता हूँ। इजाजत मिलने पर उन्होंने खींची हुई रेखा के नीचे उससे लंबी रेखा खींच दी और असंभव लगने वाले

कार्य को संभव कर दिखाया। बाद में वे स्वयं गणित के प्राध्यापक बने।

उनके छात्र जीवन की एक अन्य घटना से ज्ञात होता है कि वे कितने दृढ़संकल्पी थे। एक बार उन्होंने संकल्प किया कि सूर्य की पहली किरण देखने से पूर्व वे सारे प्रश्न हल कर लेंगे। उन्होंने एक नंगी तलवार अपने पास यह निश्चय करके रख ली कि यदि भोर होने से पूर्व मैं सभी प्रश्न हल नहीं कर सका तो तलवार से अपने आपको समाप्त कर लूँगा। रात तेजी से व्यतीत हो रही थी।

भोर होने को ही थी, परंतु वे प्रश्न हल नहीं कर पाए। उन्होंने तलवार की नोंक अपनी गरदन पर रखकर दबाई। रक्त की धारा बहने लगी। अचानक उन्हें लगा कि मानो अंतरिक्ष में प्रश्न का उत्तर लिखा हुआ है।

उन्होंने तलवार फेंकी और तुरंत उस उत्तर को लिख लिया। अपने संकल्प के कारण उनमें उस शक्ति का उदय हुआ कि यही तीर्थ राम विश्वभर को भारतीय अध्यात्म का संदेश देकर उसके गूढ़तम जीवन प्रश्नों को हल कर सके।

बचपन से ही उनके मन में वैराग्य के भाव पैदा होते रहते थे, पर उस समय तक उनकी पूरी गृहस्थी जम चुकी थी। इस कारण वह वैरागी होकर स्वच्छंद विचरण करने की अपनी इच्छा पूरी करने में सफल नहीं हो पा रहे थे। उनका कहना था कि यदि बचपन में मुझे इस बात का ज्ञान होता तो मैं कभी विवाह के बंधन में नहीं बँधता।

इस बीच उनका संपर्क सनातन धर्मसभा से हुआ और सन् 1897 में वे सभा के मंत्री बनाए गए। लाहौर में उन्हें जगद्गुरु शंकराचार्य का सान्निध्य मिला और उनकी संन्यास लेने की इच्छा जाग्रत होने लगी। पिता और पत्नी के विरोध के बावजूद उन्होंने सन् 1899 में दीपावली के दिन संन्यास ग्रहण कर लिया। अब वे हरिद्वार में जाकर निवास करने लगे। संन्यास लेने के बाद उनका नाम रामतीर्थ हो गया।

स्वामी रामतीर्थ ने वेदांत और अन्य अनेक धार्मिक ग्रंथों का गहन अध्ययन किया। सन् 1901 में मथुरा में हुए सर्वधर्म सम्मेलन के वे सभापति बनाए गए। उनके विचारों का उपस्थित धर्माचार्यों पर बहुत गहरा प्रभाव हुआ। इस अवसर पर उन्होंने अपने अकाट्य तर्कों से ईसाइयों द्वारा हिंदू धर्म पर किए गए आक्षेपों का करारा उत्तर दिया। सन् 1902 में जब स्वामी जी टिहरी गए तो वहाँ पर उनकी भेंट टिहरी नरेश महाराजा कीर्तिशाह बहादुर से हुई।

महाराजा स्वामी जी के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने गंगा के किनारे उनके निवास की व्यवस्था करवा दी। बाद में महाराजा के प्रबंधों के अंतर्गत ही स्वामी जी भारतीय अध्यात्म के प्रचार-प्रसार के लिए विदेश यात्राओं पर भी गए। सर्वप्रथम स्वामी जी ने जापान की यात्रा की और वहाँ के टोकियो विश्वविद्यालय में उनके प्रभावकारी उद्बोधन हुए।

जापान के बाद स्वामी रामतीर्थ अमेरिका की यात्रा पर गए। अमेरिका पहुँचने पर उनका भव्य स्वागत हुआ। उनके भाषणों की चारों ओर धूम मच गई। स्वामी जी ने लगभग तीन वर्ष तक अमेरिका में रहकर अपने विचारों से पूरे देश को प्रभावित किया।

सन् 1905 में स्वामी जी स्वदेश लौट आए। यहाँ आकर भी वे निरंतर भ्रमण करके अपने विचारों का प्रचार करते रहे। इसके फलस्वरूप उनका स्वास्थ्य प्रभावित होने लगा। अब स्वामी जी ने इस संसार को त्यागने का मन बना लिया।

उन्होंने गंगा में समाधि लेकर वैकुंठ जाने का निश्चय कर लिया।

इस संदर्भ में उन्होंने एक पत्र लिखा—'मृत्यु तुम मेरा शरीर लेना चाहती हो? मैं इसकी परवाह नहीं करता। मेरे पास काम करने के बहुत शरीर हैं। मैं सूर्य-चाँद की किरणों में मिल जाऊँगा। नदी-नाले अथवा पर्वत के रूप में गीत गाया करूँगा। लगता है अब मेरे राम को बंधन पसंद नहीं।' स्वामी जी ने पत्र लिखकर मेज की दराज में रखा। अपने समस्त अप्रकाशित लेख सलीके से रख दिए। लिखा इन्हें क्रम से प्रकाशित करवाना। इस बीच रसोइया आया और भोजन के लिए आग्रह करने लगा।

स्वामी जी ने कहा मैं गंगा स्नान करके आता हूँ। रसोइया भी पीछे-पीछे चला। यह दिन 17 अक्टूबर, 1906 का था। दीपावली के इस अवसर पर स्वामी जी ने गंगा में प्रवेश किया और स्वयं को गंगा को अर्पित कर दिया। इस समय उनकी आयु मात्र 33 वर्ष की थी। स्वामी जी का जन्म दीपावली के दिन हुआ। उन्होंने संन्यास भी दीपावली के दिन ही लिया और उनको निर्वाण भी इसी दिन प्राप्त हुआ। स्वामी रामतीर्थ एक प्रकाशस्तंभ हैं, जिनसे ज्ञान का प्रकाश सतत प्रवाहित होता रहता है। ❑

पुराने समय की बात है। कबूतर अपने अंडे झाड़ियों में दिया करते थे, पर लोमड़ी उनके अंडे खा जाया करती थी। दूसरे पक्षियों ने उन्हें सीख दी कि अंडे घोंसले में रखा करो। बात कबूतरों को जँची। बहुत विचार-विमर्श के बाद उन्होंने चिड़ियों को घोंसला बनाने के प्रशिक्षण को देने के लिए आमंत्रित किया। चिड़ियों ने घोंसला बनाना प्रारंभ ही किया था कि कबूतर बोले—"अरे! यह तो बड़ा आसान है। हम खुद बना लेंगे।" चिड़ियाँ वापस लौट गईं। पर जब कबूतरों ने घोंसला बनाने का प्रयत्न किया तो विफल रहे। चिड़ियों को पुनः प्रशिक्षण हेतु बुलाया गया।

चिड़ियों ने घोंसला आधा ही बनाया था कि कबूतर बोले—"बस चिड़िया बहन! यह तो हम पहले से ही जानते थे, आगे हम बना लेंगे।" चिड़ियाँ फिर लौट गईं। इस बार प्रयास करने पर भी जब कबूतरों से घोंसला नहीं बना तो वे चिड़ियों को बुलाने गए, पर वे बोलीं—"जो जानता कुछ नहीं, पर मानता ये है कि मैं सब कुछ जानता हूँ, उस मूर्ख को कोई कुछ नहीं सिखा सकता।" नासमझ कबूतर झूठे अहंकार की वजह से घोंसला बनाना नहीं सीख पाया और इसलिए आज भी उसके घोंसले अन्य पक्षियों की तुलना में बे-ढब बनते हैं।

आत्मबल

आत्मबल इस संसार के सबसे शक्तिशाली तत्त्वों में से एक है। लौकिक साधन, भौतिक संपदाएँ और शारीरिक सामर्थ्य—मनुष्य को मात्र सुरक्षित रहने एवं निर्वाह करने की क्षमता प्रदान करते हैं, परंतु यदि प्रसुप्त आत्मबल जाग जाता है तो न केवल मनुष्य अतिमानवीय क्षमताओं का जागरण करता है, वरन इसका अंतिम सोपान 'मनुष्य में देवत्व के उदय' के रूप में हस्तगत होता है। इनसान को महामानव, ऋषि, अवतार बन पाने का सौभाग्य आत्मबल के जागरण से ही मिल पाता है।

अन्य सभी शक्ति-सामर्थ्य के साधन ज्यादा-से-ज्यादा एक व्यक्ति के कल्याण के पथ को प्रशस्त कर सकते हैं, परंतु प्रसुप्त आत्मचेतना का जागरण ऐसा चमत्कार घटित करता है, जिसके माध्यम से अगणित नर-नारी उत्थान व अभ्युदय के मार्ग पर आगे बढ़ते हैं।

साधनसंपन्न सुख-सुविधा का उपभोग करने तक ही सीमित रह जाते हैं; जबकि आत्मबल के धनी परमानंद की अनुभूति करते हैं। उपासना-साधना-आराधना के राजमार्ग पर चलने के अतिरिक्त आत्मबल प्राप्ति की अभीप्सा रखने वालों को ब्रह्मांडीय चेतना, ईश्वरीय चेतना के साथ एकात्मता का भाव विकसित करना अनिवार्य होता है। जो इस एकात्मता को विकसित कर पाते हैं, उनका आत्मबल इस कदर विकसित होता है कि वो प्रवाह को पलट देने की, तूफानों को थाम लेने की और आँधियों का रुख मोड़ देने की सामर्थ्य रखते हैं।

सत्य पूछें तो समस्त आध्यात्मिक प्रक्रियाओं का सार भी यही है। यदि व्यक्ति घंटों पूजा-पाठ करे, पर आत्मबल की दृष्टि से शून्य हो तो वो किसी भी मूल्य का नहीं। आध्यात्मिक प्रक्रियाओं का उद्देश्य अपनी आत्मचेतना का जागरण करना ही है।

उसका जागरण एक चुंबक की भाँति कार्य करता है और आत्मबल के धनी के पास दैवी अनुदान, जनसहयोग स्वयमेव खिंचे चले आते हैं। इसी आत्मबल का जागरण आध्यात्मिक प्रक्रियाओं का आधार, व्यक्तित्व परिष्कार का मूल और विश्व के परिवर्तन की केंद्रीय धुरी है। ❑

उन्नति के मार्ग पर किसी के लिए प्रतिबंध नहीं है। वह सबके लिए समान रूप से खुला है। परमात्मा के विधान में अन्याय अथवा पक्षपात की कोई गुंजाइश नहीं है। जो व्यक्ति अपने अंदर जितने अधिक गुण, जितनी अधिक क्षमता और जितनी अधिक योग्यता विकसित कर लेगा, उसी अनुपात में उतनी ही अधिक विभूतियों का अधिकारी बन जाएगा।

—परमपूज्य गुरुदेव

स्वामी विवेकानंद का कालजयी चिंतन

युगद्रष्टा स्वामी विवेकानंद के अनुसार हिंदू धर्म के प्रधान तत्त्वों का आधार है मनन एवं चिंतनयुक्त दर्शनशास्त्र तथा भिन्न-भिन्न वेदों में प्रतिपादित नैतिक उपदेश। वेदों का कथन है कि यह विश्व देश और काल की दृष्टि से अनंत और सनातन है। वह न तो कभी प्रारंभ हुआ, न कभी समाप्त होगा। वह चित्-शक्ति इस जड़-जगत् में विभिन्न अगणित प्रकारों से प्रकाशित हुई है। भारतवर्ष में उस अनंत की शक्ति नाना रूपों में व्यक्त हुई है, परंतु फिर भी वह अनंत चित्त-सत्तास्वरूप स्वयंभू, सनातन एवं अपरिणामी है।

कालजयी स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि काल की गति का शाश्वत सत्ता पर कोई असर नहीं होता। मानव-बुद्धि के लिए सर्वथा अगम्य जो अतींद्रिय भूमि है, वहाँ न तो भूत है और न भविष्य। वेदों का कथन है कि मानव की आत्मा अमर है। शरीर वृद्धि और क्षय के नियमों से बद्ध है, जिसकी वृद्धि है, उसका क्षय भी अवश्यमेव होगा, परंतु देहमध्यस्थ आत्मा तो असीम एवं सनातन है। वह अनादि और अनंत है।

हिंदू और ईसाई धर्म में जो प्रधान भेद है, वह केवल यही कि ईसाई धर्म कहता है कि इस संसार में जन्म के साथ ही मनुष्य की आत्मा का प्रारंभ हुआ और हिंदू धर्म कहता है कि मानवात्मा उस सनातन परमात्मा की एक किरण मात्र है। अत: स्वयं ईश्वर की तरह उसका भी आदि नहीं। यह मानवात्मा देह से देहांतर में संक्रमित हो रही है।

इस प्रवास में वह कितने ही भिन्न-भिन्न रूपों में व्यक्त हुई है एवं होगी। आध्यात्मिक विकास के उस महान नियमानुसार वह अधिकाधिक अभिव्यक्त हो रही है, परंतु जब वह संपूर्ण अभिव्यक्त हो जाएगी, तब उसमें और अधिक परिणाम न होगा।

स्वामी विवेकानंद कहते हैं—इस पर हमेशा शंका की जाती है कि यदि बात ऐसी ही हो तो हमें अपने पूर्वजन्म का कुछ भी स्मरण क्यों नहीं? मन समुद्र की सतह मात्र का नाम ही चेतनावस्था है, किंतु उसकी गहराई में संचित हैं—मानव के समस्त सुखात्मक और दु:खात्मक अनुभव।

आत्मा कुछ ऐसी चीज को पाने की इच्छा करती है, जो अचल हो, अविनाशी हो। शरीर और मन की यह नाना रूपात्मक समस्त प्रकृति ही अनवरत परिवर्तनशील है, पर हमारी अंतरात्मा की सर्वोच्च अभीप्सा यही है कि उसे कुछ ऐसा प्राप्त हो जाए, जिसका परिवर्तन नहीं होता, जो चिर पूर्णता को पा चुकी हो। यही है उस असीम के लिए मानवात्मा की अभीप्सा। हमारा नैतिक और मानसिक विकास जितना ही सूक्ष्मतर होता जाएगा, उस अपरिवर्तनशील शाश्वत सत्ता के प्रति हमारी अभीप्सा भी उतनी ही दृढ़ होती जाएगी।

आधुनिक बौद्ध कहते हैं कि पंचेंद्रियों के अनुभव के बाहर जो कुछ है, उसका कोई अस्तित्व है ही नहीं और मानव को स्वतंत्र सत्ता मानना भ्रममूलक है। इसके विरुद्ध विज्ञानवादियों का मत है कि प्रत्येक व्यक्ति एक स्वतंत्र सत्ता है और मानसिक विज्ञान (चेतना) के बाहर बाह्य संसार का कोई अस्तित्व नहीं है, पर समस्या का हल है

कि प्रकृति स्वतंत्रता परतंत्रता का, वास्तविकता और विज्ञानवाद का एक सम्मिश्रण है।

हमारे मन और शरीर बाह्य जगत् पर निर्भर हैं और इस बाह्य जगत् के साथ उनके संबंध के अनुरूप इस निर्भरता में हेर-फेर हुआ करता है, किंतु अंत:स्थ आत्मा तो मुक्त है। उसी प्रकार जैसे ईश्वर मुक्त है और शरीर तथा मन की विकासावस्था के अनुसार वह उनकी क्रियाओं को न्यूनाधिक मात्रा में परिचालित कर सकता है।

काल की सीमा को भेदकर आती विवेकानंद की दृष्टि देखती है—मृत्यु मात्र जीवन की दशा का परिवर्तन है। मृत्यु के बाद हम इसी विश्व में रहते हैं और पहले जिन नियमों से शासित होते थे, उन्हीं नियमों से शासित होते रहते हैं। सामान्य अवस्था से परे जाकर जिन्होंने सौंदर्य एवं ज्ञान के विकास की उच्च अवस्थाओं को प्राप्त कर लिया है, वे उस विश्व-सेना के अग्ररक्षक मात्र हैं, जो पीछे से उनका अनुसरण कर रही है।

श्रेष्ठतम की आत्मा निकृष्टतम की आत्मा से संबद्ध है और वह अनंत पूर्णता अव्यक्त भाव से बीजरूप में सभी में विद्यमान है। हमें केवल आशावादी दृष्टि का संवर्द्धन करके सभी में स्थित शुभ को देखना-सीखना चाहिए। यदि हम बैठकर केवल अपने शरीर और मन के दोषों या कमियों पर ही रोते-कलपते रहें तो उससे क्या लाभ होगा?

स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि प्रतिकूल परिस्थितियों को वीरतापूर्वक पराभूत करने में ही आत्मोन्नति की कुंजी है। आध्यात्मिक उन्नति के नियमों को आत्मसात् करना ही जीवन का उद्देश्य है। संसार के ज्ञानभंडार में प्रत्येक का बहुमूल्य योगदान है। अपनी संतानों को यह शिक्षा दो कि सच्चा धर्म सकारात्मक होता है, नकारात्मक नहीं। अशुभ एवं असत् से केवल बचे रहना ही धर्म नहीं, अपितु शुभ एवं सत्कार्यों को निरंतर करते रहना ही धर्म है। लोगों को उपदेश देने अथवा ग्रंथों का अध्ययन करने से सच्चे धर्म की प्राप्ति नहीं होती है। सच्चे धर्म की कसौटी तो पवित्र पुरुषार्थ से आत्मा का उद्भव होना ही है।

दिव्यद्रष्टा स्वामी विवेकानंद की उद्घोषणा है—हम उस एक ईश्वर में विश्वास करते हैं, जो हम सभी का पिता है, जो सर्वव्यापी है, सर्वशक्तिमान है, जो अपनी संतान की रक्षा और पथ-प्रदर्शन असीम प्रेम से किया करता है।

हम विश्वास करते हैं कि हम वही हैं, 'सोऽहम्', उसी का व्यक्तित्व हममें अभिव्यक्त है, वह हममें है और हम उसमें हैं। हमारा विश्वास है कि समस्त धर्मों में सत्य का बीज है और इसीलिए हिंदू सबका वंदन करता है, क्योंकि इस संसार में सत्य अस्वीकार करने में नहीं, स्वीकार करने में है। हम परमात्मा को विभिन्न संप्रदायों के सर्व सुंदर पुष्प अर्पित करेंगे।

हम परमात्मा से भक्ति के लिए ही भक्ति करेंगे, पुरस्कार की आशा से नहीं। हमें अपना कर्त्तव्य करना है, कर्त्तव्य के लिए न कि पुरस्कार की आशा से। इस तरह जब हमारा हृदय पवित्र हो जाएगा, तब उस पवित्र हृदय में हमें परमात्मा के दर्शन होंगे। यज्ञ, घुटने मोड़ना, अस्पष्ट शब्द उच्चारण करना अथवा वाद-विवाद करना ही धर्म नहीं है। उसका तो महत्त्व तभी है, जब वह हममें पुरुषार्थपूर्ण सुंदर कर्म करने की प्रेरणा जाग्रत करे और हमारे विचारों को उन्नत बनाकर हमें दिव्य पूर्णता का ज्ञान करा दे। ❑

धिया विप्रो अजायत। *—यजुर्वेद*

अर्थात विचारक श्रेष्ठ बुद्धि से युक्त होता है।

परमपूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा– 6

निश्छल-निर्मल और सघन आत्मीयता के धनी

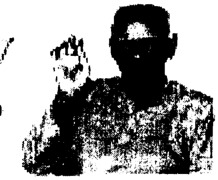

यदि गुरुदेव की इस सफलता को बुद्धिमत्ता कहा जाए तो उसका मूल कारण उनकी गुण–दृष्टि में निश्छल और निर्मल सघन आत्मीयता में पूरी तरह समाविष्ट पाया जा सकता है। उन्होंने अविश्वासियों पर भी विश्वास किया और दुर्जनों को भी सज्जन माना। ईर्ष्यालु विरोधियों और निंदकों की बड़ी संख्या उनके वैभव को देखकर उत्पन्न हो गई थी। दुनिया का रिवाज उन्हें अछूता क्यों छोड़ता। सामने मित्र बनने वाले कितने लोग शत्रु की तरह उन्हें नीचे गिराने और नष्ट करने का षड्यंत्र करते रहे।

इसकी विश्वस्त जानकारी मिलती ही रहती थी, फिर भी वे यही कहते—भूल या भ्रम में ही वे ऐसा कर रहे होंगे अथवा अपने में जो दोष–अवशेष हों उन्हें हटाने की सद्भावना से वे ऐसा कर रहे होंगे। कटुता, दुर्भावना या प्रतिशोध तो मानो उन्हें छू भी नहीं गया था। मित्र और शत्रु के बीच क्या अंतर रहना चाहिए, इसकी दीवार खड़ी करना उन्हें आया ही नहीं।

मित्र और आत्मीय के अतिरिक्त और कुछ किसी को समझा ही नहीं। इसे लोगों ने अदूरदर्शिता और अबुद्धिमत्ता कहा और बताया कि इस भूल के कारण वे आएदिन किस बुरी तरह ठगे जाते हैं तथा हानि उठाते हैं। फिर भी उनका क्रम बदला नहीं। दुर्भावसंपन्नों के साथ अपनी सद्भावना और सहकारिता में उन्होंने रत्ती भर भी कमी नहीं आने दी। फल प्रत्यक्ष है कि विरोधियों का विरोध गल गया। दुष्टों की दुष्टता जल गई और अनुचित लाभ उठाने वाले आत्मग्लानि से प्रताड़ित होकर सामने नतमस्तक होकर आ खड़े हुए।

विरोध और विरोधियों को परास्त करने का इससे अच्छा तरीका क्या हो सकता था सज्जनता से दुर्जनता को जीता जा सकता है, इसकी मिसाल गुरुदेव ने प्रस्तुत कर दी और शठ से अपनी शठता का व्यवहार आवश्यक मानने वालों को अपनी मान्यता पर पुनर्विचार करने के लिए विवश कर दिया। आरंभ की मूर्खता लगने वाली विचारपद्धति वस्तुतः बुद्धिमत्ता ही सिद्ध होकर रही।

मानसिक उद्वेगों से संत्रस्त जनमानस को वे यही कहा करते थे—न घृणा की आवश्यकता है, न द्वेष की उपयोगिता। दूसरों से लड़ने की अपेक्षा अपने से लड़ना चाहिए और दूसरों को सुधारने की अपेक्षा अपने को सुधारना चाहिए। गलतियाँ सब कुछ दूसरों की ही नहीं होतीं, कुछ अपनी भी होती हैं। सद्गुणों का अभाव और अनीति के आगे झुकना यह दो दोष ऐसे हैं, जिनकी प्रतिक्रिया दूसरों पर होती है और वे अनीतियुक्त व्यवहार करने को तैयार हो जाते हैं। अपने में सज्जनता की न्यूनता न हो और अनाचार से समझौता करने के लिए कायरता न हो तो दुष्टता की तीन–चौथाई पराजय तो उसके उत्पन्न होने से पहले ही हो जाती है, फिर सज्जनता में हजार हाथियों का बल है। वह बहुत बलवान दिखने वाले अनाचार को चारों खाने चित्त कर सकती है। ❑

अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं। वे संस्कारों की जड़ों में खाद देते हैं और अपने श्रम से उन्हें सींच-सींचकर महाप्राण शक्तियाँ बनाते हैं। —*श्रीअरविंद*

मनु, मनुष्य और मनुस्मृति

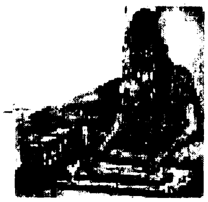

मनु से ही मनुष्य हैं। मनुष्य इस सृष्टि की अद्‌भुत कृति है। हम मनुष्य हैं, संस्कृत में 'स्य' प्रत्यय है। 'स्य' का अर्थ 'का' 'की' 'के' होता है। मनुष्य का अर्थ है—मनु के या मनु का। मानव का अर्थ भी यही है—**'मनोः अपत्यम् मानवः।'**

प्रख्यात पत्रकार और संस्कृत विद्वान डॉ0 सूर्यकांत बाली ने ऐसे तमाम उद्धरण देकर मनुष्य को मनु की संतान बताया है। मनुज, मनुष्य या मानव मनु के ही विस्तार हैं।

काल-गणना की बहुत बड़ी इकाई है—मन्वंतर। इसके पहले छोटी इकाई है—युग। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग चार युगों को जोड़कर महायुग बनता है। 31 महायुग का जोड़ मन्वंतर है।

हरेक मन्वंतर में एक मनु हैं। मन्वंतर दो मनुओं के बीच का अंतर काल है। अनेक मनु हो चुके हैं। ऋग्वेद का रचनाकाल विश्व में प्राचीनतम है। ऋग्वेद वाले मनु हरेक मंगल कार्य में आगे-आगे चलते हैं।

शतपथ ब्राह्मण में वर्णित मनु जल-प्रलय में मछली की सहायता से अकेले ही बच निकले थे। मनु ने ही सृष्टिबीजों की रक्षा की थी। अथर्ववेद वाले मनु भी ऐसे ही हैं और मत्स्य पुराण वाले मनु भी। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' में भी इन्हीं मनु का अद्‌भुत काव्य वर्णन है। भारतीय काव्य, पुराण और वैदिक मंत्रों में विस्तृत मनु हमारी राष्ट्रीय स्मृति के रहस्यपूर्ण प्रतीक हैं।

मनु की स्मृति में लगभग 2000 वर्ष पहले एक ग्रंथ रचा गया—मनुस्मृति। दो हजार वर्ष की गणना का अनुमान कोरी कल्पना नहीं है। मनुस्मृति की भाषा वैदिक संस्कृत छंदस् में नहीं है। मनुस्मृति के श्लोक व्याकरण के अनुशासन में हैं। व्याकरण का बंधन पाणिनि के बाद विकसित हुआ।

मनुस्मृति की संस्कृत शतपथ ब्राह्मण या ऋग्वेद, अथर्ववेद के बाद की है। श्लोकों की रचना में भाषा का आधुनिक प्रवाह है। 2000 वर्ष पहले का इतिहास बहुत प्राचीन नहीं है। इसके 500 वर्ष पहले बुद्ध हैं। मनुस्मृति मनु की रचना नहीं है।

यह मनु की स्मृति में लिखी गई, किसी अन्य विद्वान की कृति है। वैसी ही जैसी गांधी जी की स्मृति में लिखी गई कोई पुस्तक। गांधी जी का लिखा साहित्य उपलब्ध है। इसलिए हम गांधी जी की स्मृति में लिखे गए ग्रंथों व गांधी द्वारा लिखे गए साहित्य में फरक कर लेते हैं। मनु ने स्वयं कोई पुस्तक लिखी नहीं। ऋग्वेद में भी मनु संबंधी विवरण ऋषियों के हैं और शतपथ ब्राह्मण या पुराणों के मनुविषयक उल्लेख अन्य रचनाकारों के हैं।

जल-प्रलय कवि-कल्पना नहीं। जल-प्रलय छोटी घटना थी नहीं। इसका उल्लेख बाइबिल में है, कुरान में भी है। चीन की कथाओं में है। यूनान के भी कथासूत्रों में है। जल-प्रलय में अकेले बचे मनु ने कोई ग्रंथ लिखा नहीं। वे मनुस्मृति के लेखक नहीं हैं। मनुस्मृति के कुछ अंश जाति-वर्ण विभेदक हैं। इसी आधार पर मनुस्मृति की निंदा होती है।

मनुस्मृति पर जाति-व्यवस्था को जन्म देने के आरोप लगाए जाते हैं। कतिपय विद्वानों के अनुसार मनु इस आरोप के उत्तर या स्पष्टीकरण देने के लिए उपलब्ध नहीं हैं और वे तब भी उपलब्ध नहीं थे, जब मनुस्मृति की रचना हुई। उनका कहना है कि हमें देखना यह चाहिए कि क्या कोई भी एक व्यक्ति बृहत्तर भारतीय समाज को जात-पाँत में विभाजित करने की शक्ति से युक्त हो सकता है? क्या समाज उसके आदेशानुसार जातियों में बँट जाने को तैयार था? क्या उसके आदेशों के सामने पूरा समाज विवश था?

वह मनु हों या कोई भी शक्तिशाली सम्राट—क्या एक व्यक्ति ऐसा कार्य करने में सक्षम हो सकता था? क्या आधुनिक इतिहास के शक्तिसंपन्न तानाशाह, राजा व बादशाह ऐसी व्यवस्था लागू करने में सक्षम हैं? ऐसे प्रश्नों का उत्तर नहीं है।

डॉ० बी० आर० आंबेडकर ने जाति के जन्म और विकास पर गहन विवेचन और विश्लेषण किया था। उन्होंने कोलंबिया विश्वविद्यालय, न्यूयार्क में 9 मई, 1916 के दिन एक लिखित भाषण दिया था। सन् 1993 में डॉ० बाबा साहब आंबेडकर लेख व भाषण नामक पुस्तक को प्रकाशित किया गया था।

संपादक मंडल ने भूमिका में 'भारत में जातियाँ' शीर्षक देकर लिखा है—डॉ० आंबेडकर के अनुसार भारतीय प्रायद्वीप के एक छोर से दूसरे छोर तक लोगों को सांस्कृतिक एकता ही एक सूत्र में बाँधती है। जातियों के संबंध में विद्वानों के मतों का मूल्यांकन करने के बाद डॉ० आंबेडकर का कथन है कि बहिर्विवाह के ऊपर अंतर्विवाह का अध्यारोपण ही जाति-समूह बनने का मुख्य कारण है।

डॉ० आंबेडकर के अनुसार समाज में छोटे-छोटे भाग बनना एक प्राकृतिक प्रक्रिया का घटना है। इन्हीं छोटे भागों या समुदायों ने बहिष्करण व अनुकरण द्वारा विभिन्न जातियों का रूप ले लिया। डॉ० आंबेडकर का यह भाषण पठनीय है। उन्होंने लिखा है—मैं सर्वप्रथम भारत के स्मृतिकार के संबंध में कहूँगा। प्रत्येक देश में आपातकाल में अवतार के रूप में स्मृतिकार उत्पन्न होते हैं, ताकि पतित समाज को सही दिशा-बोध कराया जा सके और न्याय तथा नैतिकता का विधान दिया जा सके।

यदि यह कथन सही है कि मनु ने जाति-विधान की रचना की थी तो वह अवश्य ही एक दुस्साहसी व्यक्ति रहे होंगे। जिस समाज ने उनके समाज-विभाजन नियम को स्वीकार किया, वह अवश्य ही उससे भिन्न रहा होगा, जिससे हम अवगत हैं। यह सोचा भी नहीं जा सकता कि जाति-विधान कोई प्रदत्त वस्तु थी।

उन्होंने आगे लिखा है—मैं आपको एक बात यह बताना चाहता हूँ कि जाति धर्म का नियम मनु द्वारा प्रदत्त नहीं है। इस तरह डॉ० आंबेडकर ने मनु को जाति-विधान का जन्मदाता नहीं माना।

भारतीय इतिहास में धर्म कभी भी संगठित सत्ता नहीं रहा। पोप जैसी संस्था यहाँ कभी नहीं रही। हिंदू धर्म की कोई एक सर्वमान्य पुस्तक नहीं। दिलचस्प बात यह है कि भारत के प्राचीन काव्य को भी धार्मिकों ने सिर झुकाया। वैदिक साहित्य काव्य-स्तुतियाँ हैं।

ऋग्वेद के साढ़े दस हजार मंत्रों में एक भी मंत्र में निर्देशात्मक बात नहीं। द्रष्टा, ऋषि, कवि अपनी बातें मानने पर जोर नहीं देते। वाल्मीकि रचित 'रामायण' अंतरराष्ट्रीय स्तर का महाकाव्य है। काव्य के सभी रसों का प्रवाह है। करुण रस में भी मधुरस का छंदस्।

भारत के लोकजीवन में इसे धर्मशास्त्र की तरह नमन किया जाता है। गीता विश्वस्तर पर चर्चित है ही। रचनाकार कवि के अनुसार श्रीकृष्ण वक्ता हैं, वे प्रश्नकर्त्ता अर्जुन की जिज्ञासाओं का समाधान करते हैं। यहाँ भी मानने पर जोर नहीं। गीता-प्रबोधन के अंतिम भाग में जो उचित हो, वैसा अपनी इच्छानुसार करो—'**यथेच्छसि कुरू**।' मनुस्मृति के रचनाकार ने अपनी इच्छानुसार पुस्तक लिखी। उसे मानना या न मानना बाध्यकारी नहीं। किसी राजा या राज्य-व्यवस्था ने उसे संविधान का दरजा नहीं दिया।

मनुस्मृतिवाली राज-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था इतिहास में नहीं मिलती। याज्ञवल्क्य स्मृतिवाली भी नहीं। याज्ञवल्क्य स्मृति भी याज्ञवल्क्य की लिखी नहीं हो सकती है। वे बृहदारण्यक उपनिषद् में दार्शनिक नायक जैसे हैं। उपनिषद् में उनके अनेक वक्तव्य हैं। स्मृति और उपनिषद् साहित्य की तुलना ही संभव नहीं है। उपनिषद् विश्वदर्शन का हिरण्यगर्भ है। उपनिषद् में जीवन के सिद्धांतों का सूत्र समाहित है। स्मृति में सामाजिक जीवन के सिद्धांतों का आख्यान मिलता है।

भारतीय समाज में धर्म और दर्शन सतत गतिशील रहे हैं। हम हजारों बरस प्राचीन साहित्य से श्रेय और प्रेय ही ग्रहण करते हैं। कालबाह्य रूढ़ि को छोड़ने और नूतन को आत्मसात् करने की भारतीय अभीप्सा जड़ नहीं है। संस्कृति में पुनर्नवा चेतना है। हरेक ऊषा नई। हरेक प्रभात सुप्रभात। सतत प्रवाही है, यहाँ का राष्ट्रजीवन। इसी सांस्कृतिक चेतना में गति करते हुए प्रगतिशील होने का रमण सुख संभव है। हम मनुष्य हैं और हमें मनुष्य बनकर अपना सामाजिक और आत्मिक विकास करना चाहिए। ❑

पता-फोन परिवर्तन सूचना

अखण्ड ज्योति संस्थान का स्थान परिवर्तित हो गया है, नया पता अब इस प्रकार है—

अखण्ड ज्योति संस्थान

बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड, जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)

बदले हुए नए फोन नंबर

दूरभाष नंबर : (0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449

मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039

कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस.एम.एस. न करें

नया ईमेल-akhand jyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

कल्पनाशक्ति का सृजनात्मक उपयोग

कल्पना एक ऐसी शक्ति है, जिसके बल पर व्यक्ति मनचाही सृष्टि का सृजन कर सकता है, मनचाही सफलता को हस्तगत कर सकता है, लेकिन प्राय: हम इसकी शक्ति से अनभिज्ञ ही रहते हैं व इस नैसर्गिक क्षमता का सदुपयोग नहीं कर पाते। यदि हम कल्पनाशक्ति के संदर्भ में आधारभूत जानकारियों से अवगत हो जाएँ व इसका सदुपयोग करना प्रारंभ कर दें, तो हम जीवन को अधिक सुखी, सफल व आनंदमय बना सकते हैं।

कल्पना मानसिक क्षमताओं में एक विशिष्ट शक्ति है, जिसके द्वारा हम कल्पित प्रतिमाओं का एक प्रकार से प्रयोग करते हैं। यह हमको अपने पिछले अनुभव के आधार पर नई वस्तु का निर्माण करने में सहायता करती है, जो पहले कभी नहीं थी। इस तरह कल्पना एक मानसिक प्रक्रिया है, जिसका आधार पूर्व अनुभव रहते हैं। इसके बिना कल्पना साकार रूप नहीं ले पाती। कल्पना के लिए एक धरातल या अस्तित्व की आवश्यकता होती है। पूर्व अनुभव धरातल के रूप में कल्पना को सहायता देते हैं।

इस तरह कल्पना दूरस्थ या अभी अमूर्त वस्तुओं के संबंध का चिंतन है, जिसे हम अपने संकल्प एवं पुरुषार्थ के आधार पर साकार करते हैं। कल्पना के माध्यम से हम किसी अमूर्त विचार या वस्तु का विजुअलाइजेशन या मानसिक दर्शन करते हैं, अपने मस्तिष्क में इनकी प्रतिमा को स्थापित करते हैं, फिर इसी दिशा में प्रयास प्रारंभ होते हैं। बुद्धि के माध्यम से कल्पनाओं की काट-छाँट होती है, इच्छाशक्ति के माध्यम से इसको मूर्तरूप देते हैं। भावनाएँ इसमें ईंधन का काम करती हैं, तो वहीं अंत:प्रज्ञा इससे जुड़े त्वरित निर्णय लेने में सहायक बनती है।

इस तरह कल्पनाशक्ति व्यक्ति की योजना शक्ति है, जिसके माध्यम से हम अपने जीवन के भव्यतम रूप का सृजन करते हैं। अत: कल्पना अपनी सृष्टि को गढ़ने का श्रेष्ठ माध्यम है। व्यावहारिक भाषा में इसे स्वप्न देखना भी कहा जा सकता है, जो जीवन के किसी भी क्षेत्र के हो सकते हैं। जो स्वप्न देखेगा, वही कल्पनाशीलता के सोपान पर चढ़ते हुए श्रम-साधना द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है।

लक्ष्यानुरूप प्रयास करने की दिशा तय करना कल्पनाशक्ति का ही कार्य है। कल्पनाशीलता से ही योजना का प्रारूप निर्मित करने में सहायता मिलती है। भावी दृष्टिकोण उसी में समाहित रहता है। व्यक्ति के मानस को झकझोरकर जीवन को उचित दिशा में प्रवृत्त करना कल्पनाशीलता द्वारा ही संभव होता है। इस तरह जीवन के सभी क्षेत्रों में लक्ष्य बनाने का कार्य, कार्य के साथ पूर्ण मनोयोग और स्मृति से युक्त रहने का मार्ग कल्पना प्रशस्त करती है।

कल्पना के साथ आप कहीं भी विचरण कर सकते हैं और कुछ भी कर सकते हैं। यथार्थ के संसार की सीमा है, लेकिन कल्पना के जगत् की नहीं। इसीलिए कहा गया है कि जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि। वास्तव में कल्पना के साथ हम उन लोकों में पहुँचते हैं, जो कभी थे ही नहीं; जबकि बिना कल्पना के हम कहीं नहीं जा सकते। किसी ने सही कहा है कि आज जो साबित हो चुका है, मूर्त है, वह कभी केवल कल्पना मात्र था।

इस तरह कल्पना के माध्यम से हमें अपने भावी जीवन की झलक मिलती है। व्यक्ति कल्पना के आधार पर भावी जीवन की रणनीति तैयार करता है और उसको व्यवहार में लाता है। कल्पना के साथ बौद्धिक प्रखरता तीव्र होती है, ज्ञानार्जन में तीव्रता आती है। चिंतन एवं तर्क में कल्पना का बाहुल्य समस्या का हल करने में सहायक रहता है। कल्पनाशक्ति का प्रयोग करके व्यक्ति अपनी रुचि में परिष्कार या सुधार करता है।

इस आधार पर कल्पना से निराशा का निवारण होता है व दु:ख आदि से छुटकारा मिलता है तथा जीवन अधिक सुखी, समुन्नत व सुंदर बनता है, लेकिन यदि भाव नकारात्मक हैं तो मन में अनेक तरह के संशय, आवेग और तनाव भी कल्पना द्वारा उत्पन्न होते हैं।

अत: कल्पना जहाँ अपने सकारात्मक रूप में सृजन का आधार है, तो वहीं नकारात्मक रूप में यह कुकल्पना का रूप लेकर जीवन को नरकतुल्य भी बना सकती है। जीवन में तमाम तरह के भयों को अधिकांशत: कल्पित माना जाता है, जिनमें से एक-तिहाई भी वास्तव में घटित नहीं होते। अत: नकारात्मक कल्पना पर नियंत्रण करना अत्यावश्यक हो जाता है।

जीवन में कल्पनाशक्ति के महत्त्व को देखते हुए इसके विकास का यथासंभव प्रयास चलता रहना चाहिए। कल्पनाशक्ति को बढ़ाने के लिए अपनी उत्सुकता बनाए रखें, अपनी जिज्ञासा को मरने न दें तथा सदा कुछ नया करते रहें और अपनी रुचि को विस्तार दें। इसके साथ खूब अध्ययन करें। नई-नई पुस्तकें कल्पनाशक्ति की छिपी क्षमता को प्रज्वलित करने का काम करती हैं; नए विचारों का सृजन करती हैं तथा कल्पना को नई उड़ान भरने का आधार बनती हैं।

अध्ययन के साथ डायरी लिखकर अपने विचारों को व्यक्त करें। नित नई कार्य-योजनाएँ बनाएँ, इनको मूर्त करने के व्यावहारिक कार्यक्रम बनाएँ व इन्हें क्रियान्वित करें। एक आसान लक्ष्य तय करें, उसको उपलब्ध करें। चीजों को समझने की कोशिश करें, रटें नहीं। तर्क-वितर्क करें। नए, अनान्वेषित मार्ग के लिए तैयार रहें, मन को खुला रखें। चीजों को भिन्न नजरिए से देखें। कुछ समय सृजनात्मक लोगों के साथ बिताएँ। कहानियाँ सुनाएँ तथा अपनी प्रतिभा का विकास करें।

इन सबके साथ मन को ध्यान के माध्यम से विश्रांत रखना सीखें। शांत-स्थिर मन कल्पनाशक्ति के विकास के लिए बहुत सहायक रहता है, बल्कि इसी संतुलित मन:स्थति के गर्भ से कल्पनाओं की उड़ान अपने चरम की ओर बढ़ती है।

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः।
नानायोनिसहस्त्राणि मयोषितानि यानि वै॥

अर्थात मैं मरकर फिर जन्मा हूँ और जन्म लेकर फिर मरा हूँ। ऐसे ही मुझ आत्मा ने सहस्रों गर्भशियों का सेवन किया है।

महान वैज्ञानिक आइन्स्टीन के शब्दों में कल्पना ज्ञान से अधिक महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि ज्ञान सीमित है। जबकि कल्पना के दायरें में तो पूरा विश्व है। जार्ज बर्नार्ड शॉ ने क्या खूब कहा है कि कल्पना सृजन का शुभारंभ है।

आप जिसकी चाहत रखते हैं, उसकी कल्पना करते हैं, जिसकी आप कल्पना करते हैं, उसकी इच्छा करते हैं और अंतत: जिसकी आप इच्छा करते हैं, उसका आप सृजन करते हैं। वस्तुत: कल्पना आत्मा की आँख है। इससे आप जीवन के उज्ज्वल, सुनहरे तथा विशाल स्वप्न को देखते हैं, उसी के अनुरूप आपके जीवन में भव्य, दिव्य एवं विराट सृष्टि का सृजन होता जाता है और जीवन धन्यता की ओर अग्रसर होता है। ❑

चेतना की शिखर यात्रा–246

प्रज्ञावतार के लीला केंद्र

विगत अंक में आपने पढ़ा कि गायत्री परिवार के सूत्र-संचालक दादा गुरुदेव की प्रेरणा के अनुसार परमपूज्य गुरुदेव ने पुण्य-क्षेत्रों में 24 शक्तिपीठों की स्थापना किए जाने की उद्घोषणा की। यह घोषणा भले ही सन् 1979 के चैत्र नवरात्र को हुई, परंतु पूज्यवर ने इसकी रूपरेखा एवं इसके स्वरूप को एक दशक पूर्व ही सुनिश्चित कर चुनिंदा साधकों को उन स्थानों और सिद्ध तरंगों के संसर्ग में भेज दिया था। भारत के उन ऐतिहासिक एवं प्रमुख तीर्थों में ऊर्जावान साधकों के माध्यम से शक्तिपीठों की स्थापना के पीछे पूज्य गुरुदेव का लक्ष्य एक तो तीर्थों का जीर्णोद्धार कर उनके प्राण तत्त्व को उभारना था तो दूसरा गायत्री शक्तिपीठ में आध्यात्मिक एवं सामाजिक गतिविधियों को अधिक जीवंत एवं प्रखर बनाकर संपर्क-क्षेत्र में आने वालों को उस ऊर्जा से लाभान्वित करना भी था। शक्तिपीठों की स्थापना की आधिकारिक घोषणा ने अनेकानेक साधकों को इस हेतु अपनी यथायोग्य भूमिका को सुनिश्चित करने के लिए न केवल लालायित किया, वरन उन्हें स्वयं को इस पहल में अग्रिम आने की प्रतिस्पर्धा का भी हिस्सा बनाया। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण....

सिद्धपीठों की प्रासंगिकता

एक स्थान पर कुछ तांत्रिक लोगों का भविष्य बताते दिखाई दे रहे थे। इसके लिए वे पाँच से पच्चीस रुपये तक दक्षिणा की माँग करते। नहीं देने पर शाप देने का भय दिखाते। इन अनुभवों के बावजूद अवतार नारायण जी का मानना था कि कामाख्या शक्तिपीठ में दैवी शक्ति का प्रचंड प्रवाह बहता है और उससे संपर्क किया जा सकता है।

शक्तिपीठ की घोषणा होने के बाद वे व्रज-क्षेत्र में एक स्थापना का संकल्प लेने के लिए आए। उन्होंने निवेदन किया कि गुरुदेव आप आशीर्वाद दें कि व्रज-क्षेत्र में कामाख्या जैसा सिद्धस्थान बन जाए। दरअसल वे गायत्री शक्तिपीठ के प्रति कामाख्या जैसी कल्पनाएँ करके ही आए थे।

उस समय की वास्तविकता से हटकर बल्कि पुराणों, तंत्र ग्रंथों और सिद्ध महापुरुषों की जीवन-लीलाओं से प्रभावित होकर एक ऐसे मनोलोक की रचना उन्होंने कर ली थी, जहाँ पहुँचते ही व्यक्ति के हर तरह के कष्ट दूर हो जाएँ।

इसी भावना से उन्होंने गुरुदेव के सामने अपनी तरह के गायत्री शक्तिपीठ का विचार रखा। गुरुदेव ने समझाया कि तुम जिस तरह की स्थापना की बात कर रहे हो वह तंत्र से संबंधित है। किसी जमाने में स्थितियाँ रही होंगी कि इस तरह की स्थापनाएँ बनीं और साधकों तथा सामान्य जनों में सिद्धि-शक्ति का आविर्भाव हुआ। अब उस तरह के निर्माणों के बारे

में सोचना भी नहीं चाहिए। ''तो गुरुदेव क्या तंत्र विद्या अब मिथ्या हो गई ?''—अवतार नारायण जी ने पूछा। इस पर गुरुदेव ने कहा—''मिथ्या तो नहीं है, लेकिन उसे साधने की पात्रता बहुत कम लोगों में है। इस विद्या में विद्युत जैसा प्रवाह और परमाणु जैसी ऊर्जा है। कुछ खास लोगों के लिए यह विद्या साध्य हो सकती है। सबके लिए साध्य बनाना अभीष्ट नहीं है। हमे तो गंगा की तरह सबको निर्मल और पवित्र करने वाली धारा चाहिए। यह धारा गायत्री-उपासना-साधना और समाजसेवा से ही बह सकती है। सीधा, सरल और व्यावहारिक मार्ग अपनाना हो तो गायत्री शक्तिपीठों के अभियान में जुटो।'' सुनकर अवतार नारायण जी का संशय मिट गया।

उन्होंने कामाख्या शक्तिपीठ के बारे में अपने अनुभव भी कहना चाहे थे। स्मृतियाँ जैसे धक्का दे रही थीं, लेकिन चेतना उस बाढ़ को व्यर्थ बताकर जहाँ की तहाँ थाम लेती थी। यह ठहराव बताता था कि बताने की कोई जरूरत नहीं है, गुरुदेव तक सभी सूचनाएँ, भावनाएँ और व्यक्त होने से रह गई बातें संप्रेषित हो गई हैं।

तंत्र-साधनाओं के प्रचार और शिक्षण पर मध्यकाल से ही अघोषित प्रतिबंध-सा रहा है। इक्का दुक्का योगी ही कभी-कदा इस मार्ग पर कदम रखते थे। अवतार नारायण जी की तरह और भी कई साधकों को लगा था कि गायत्री शक्तिपीठों में गायत्री की वाममार्गी, सौम्य तांत्रिक साधनाएँ भी होंगी। उनका अभ्यास भी किया जा सकेगा। जिन परिव्राजकों को शांतिकुंज में तैयार किया जाएगा और शक्तिपीठों में भेजा जाएगा, उन्हें इस संबंध में भी प्रशिक्षण दिया जाएगा।

ये अपेक्षाएँ और कल्पनाएँ गुरुदेव द्वारा किए गए विवेचन से ज्यादा साधकों के अनुभवों से ज्यादा स्पष्ट हुईं। गुरुदेव ने गायत्री शक्तिपीठों की योजना के बारे में अपने लिखित निर्देश से अथवा प्रवचनों में उन्होंने सकारात्मक पक्षों पर काफी कुछ कह दिया था। निषेधों को लेकर कुछ कहने की जरूरत नहीं समझी थी।

कार्यकर्त्ताओं को इस बारे में जाँच-परख की जरूरत महसूस नहीं हुई। फिर भी कुछ तथ्य साधकों को और परिवेश में भी स्पष्ट होते रहे। सभी जानते हैं कि शक्तिपीठों की संख्या इक्यावन तक ही सीमित नहीं है। यह संख्या पूरा हो जाने के बाद और भी स्थापनाएँ होती रही हैं। तंत्र और सिद्धि-साधना की दृष्टि से नवीन शक्तिपीठ पश्चिम बंगाल में वीरभूमि के पास तारापुर में है। द्वारका नदी के किनारे बने इस शक्तिपीठ को वामाक्षेपा से पहले बहुत कम लोग जानते थे। वामाक्षेपा स्वामी रामकृष्ण के समकालीन थे और अपनी इष्ट तारादेवी की भक्ति में भावविह्वल रहते थे।

तारापुर से ही थोड़ी दूर आटला ग्राम में जन्में इन संत का वास्तविक नाम वामाचरण था। उनके एक छोटे भाई और थे रामचंद्र या रामाचरण। वामाचरण बड़े थे, बचपन से ही अपने गाँव के पास भगवती तारा के मंदिर में ही उनका सारा समय बीतता था। इस स्थान के बारे में मान्यता है कि यह भी उन स्थानों में है, जहाँ पौराणिक संदर्भों के अनुसार सती के शरीर का एक अंग गिरा था।

कहते हैं कि इस स्थान पर सती की आँखों की पुतली,नयन का तारा गिरा था, इसलिए यहाँ का नाम तारापीठ हो गया। मध्यकाल में यह जगह मुगल शासकों ने अपने अधिकार में कर ली थी। करीब दो सौ साल पहले नाटोर की रानी भवानी ने इस जगह को विनिमय में वापस ले लिया। राज्य के शासक राजा रामकृष्ण ने यहाँ एक छोटा-सा मंदिर बनवाया और मंदिर में भोग आदि की व्यवस्था की।

उन्होंने वामाक्षेपा के परमगुरु आनंदनाथ को पीठ का प्रमुख बनाया और व्यवस्था सौंपी। उनके बाद स्वामी मोक्षदानंद तारापीठ के कौलिक हुए। वामाक्षेपा को उन्होंने कौल साधना की दीक्षा दी थी। बचपन में देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनाना और

उनसे खेलना वामा का प्रिय शौक था। खासतौर पर वे काली की मूर्ति बनाया करते।

कभी-कभार राम, कृष्ण और अन्य दैवी स्वरूपों की भी। पिता उन्हें इस काम के लिए रोकते-टोकते थे। नहीं मानते तो पीट भी देते, लेकिन वामा अपने काम में लगे रहते। वे छोटे ही थे कि पिता का निधन हो गया। वामाचरण बहुत प्रसन्न हुए। पिता के निधन से वे इसलिए खुश हुए कि अब कोई रोकने वाला नहीं रहा, लेकिन पिता के नहीं रहने के बाद उनके कंधों पर परिवार का दायित्व भी आ गया।

उस दायित्व के साथ माँ ने उन पर विवाह का दबाव बनाया। वामा ने इसके लिए मना कर दिया और गाँव में ही एक मंदिर में पुजारी का काम करने लगे। कुछ समय तक उन्होंने गाँव में पूजा-पाठ का काम सँभाला और बाद में तारापुर चले गए। वहाँ के तारापीठ में कौलिक मोक्षदानंद से तांत्रिक दीक्षा ली और उन्हीं की देख-रेख में साधना करने लगे।

माँ तारा की वापसी

याद रहे क्षेपा शब्द क्षिप्त शब्द से बना है, क्षिप्त अर्थात उन्मत्त। पिछले जन्म के साधना संस्कारों और तंत्र के प्रभाव से उनका आचरण अव्याख्येय हो चला था। इसलिए श्रद्धालु उन्हें क्षेपा कहते थे। पिता के न रहने के बाद उन्हें तारापीठ में पुजारी बना दिया गया। वामाचरण को मंदिर की मर्यादाएँ और अनुशासन से ज्यादा माँ की भक्ति सुहाती थी।

भावप्रवण भक्त की तरह वे माँ तारा के विग्रह से मनुष्यों जैसा व्यवहार करते। माँ को चढ़ाए जाने वाला भोजन सुस्वादु है या नहीं? माँ सुखी और प्रसन्न हैं या नहीं? यहाँ की व्यवस्था माँ के लिए अनुकूल है अथवा नहीं? आदि बातों का वे ध्यान रखते थे। ममता, वात्सल्य और श्रद्धा के भाव के कारण कभी-कभी वे ऐसा व्यवहार कर बैठते कि मंदिर के प्रबंधकों को नागवार गुजरता। जैसे कभी-कभार वे भोग-प्रसाद के लिए आया भोजन माँ की प्रतिमा को चढ़ाने से पहले खुद ही चख लेते।

उन्हें प्रतीत होता कि माँ सो रही हैं तो वे मंदिर में समय पर आरती-पूजा नहीं करते। उन्हें लगता कि माँ उठ गई हैं, तब घंटा-घड़ियाल बजाते थे। बहुधा वे मंदिर छोड़कर निबिड़ वन में या श्मशान में भी चले जाते। वन में कहीं भी बैठकर वे ध्यान-पूजा करने लगते। मरघट में बैठकर जलती हुई चिता और उसकी ठंढी हुई राख को देखते रहते। फिर ध्यान आता कि माँ जाग गई होंगी तो वे दौड़े चले आते और माँ तारा की प्रतिमा निहारने लगते। पूछते कि कैसा लग रहा है माँ?

वामाक्षेपा के इस तरह के व्यवहार को मंदिर के प्रबंधक अचरज भरी दृष्टि से देखते थे। कुछ दिन बाद नए पुजारी पर नाराज होना और डाँटना-डपटना शुरू किया। मंदिर की मालिक नाटोर की रानी से इसकी शिकायत की। रानी माँ ने शिकायत को सुना-अनसुना कर दिया। शिकायत का अपेक्षित असर नहीं होने पर प्रबंधक और कुपित हुए। उन्होंने एक दिन वामाक्षेपा की पिटाई कर दी।

इस घटना के चार-पाँच दिन बाद रात में रानी माँ ने स्वप्न देखा कि माँ तारा शक्तिपीठ छोड़कर जा रही हैं। रानी माँ ने पूछा—''माँ कहाँ जा रही हो?'' तो वे बोलीं—''कैलास जा रही हूँ। मैं अब यहाँ नहीं रहूँगी।'' माँ दु:खी दिखाई दे रही थीं और उनके माथे पर तिलक, वेणी में फूल और गले में हार भी नहीं था। रानी माँ सपने में बहुत बुरी तरह डर गईं और माँ से जाने का कारण पूछने लगीं। माँ ने कहा—''यहाँ मेरे बच्चे को मारा-पीटा जाता है। तुम्हें पता नहीं, वह जन्मों से यहाँ है। उसका तिरस्कार हुआ है।''

रानी माँ भगवती तारा से माफी माँगने लगीं। जगदंबा ने उनकी क्षमा-याचना को नकार दिया और कहा—''उस बच्चे ने चार दिन से कुछ नहीं खाया है। तुम्हारे लोगों ने उसे मेरे पास आने से रोक दिया। वह जहाँ-तहाँ भटक रहा है। उसने कुछ नहीं खाया तो मैं कैसे कुछ खा सकती हूँ।''

रानी माँ बिलख-बिलखकर रोने लगीं और रोते-रोते उनकी आँखें खुल गईं। उन्हें लग रहा था कि वाकई कुछ अनहोनी हो गई है। रानी माँ ने मंदिर के प्रबंधकों को बुलाया। उन्हें डाँटा-डपटा और वामाक्षेपा को बुलाकर-मनाकर लाने के लिए कहा। प्रबंधकों ने वामा को जगह-जगह ढूँढ़ा। शाम होते-होते वह उन्हें मिले एक पेड़ के नीचे बैठे, किसी से बात कर रहे थे। किस से कर रहे थे। यह पता नहीं चल रहा था।

मंदिर प्रबंधकों को देखकर वे भागने लगे, पर प्रबंधकों ने उन्हें दूर तक पीछा कर आखिर रोक ही लिया और वापस चलने के लिए मनाया। वामा वापस आ गए। उन्होंने मंदिर में पूजा करना शुरू किया और तारापीठ की रौनक वापस लौटी। इस तरह के कितने ही भावभरे प्रसंग वामा के जीवन चरित में बिखरे पड़े हैं।

योग विद्या के जानकारों का मानना है कि उनकी आध्यात्मिक स्थिति अपने समकालीन संत स्वामी रामकृष्ण परमहंस जैसी ही थी। राग-द्वेष से सर्वथा मुक्त और निस्पृह। स्वामी रामकृष्ण ने भी तंत्र के साथ भक्तिमार्ग को ही अपनाए रखा। उस समय के साधकों और श्रद्धालुओं का मानना था कि बाबा को सब कुछ सिद्ध है।

वामाक्षेपा का इतना उल्लेख करने के बाद एक घटना का विवरण अभीष्ट है। इस घटना का उल्लेख 'हमारे संत महात्मा' पुस्तक में किया गया है। दिल्ली के एक संत चरण अनुरागी राधाकांत जायसवाल ने पुस्तक तैयार कराई और सन् 1957 में प्रकाशित की थी।

इस पुस्तक की भूमिका मानव सेवा संघ वृंदावन के संस्थापक स्वामी शरणानंद जी ने लिखी है। पुस्तक के लेखन-प्रकाशन में उनकी प्रेरणा ही प्रमुख थी। स्वामी जी यद्यपि प्रज्ञाचक्षु थे, लेकिन उन्होंने राधाकांत जी को इसे तैयार करने का आदेश दिया था।

भारत के अठारह संतों का परिचय उकेरती हुई लिखी इस पुस्तक में वामाक्षेपा से संबंधित एक विलक्षण घटना का उल्लेख है। राधाकांत जी ने लिखा है कि उनके पितामह जयप्रकाश जी 1914 के कुंभ में हरिद्वार गए। गंगातट पर घूमते-दर्शन करते हुए वे कदली वन के पास बह रही धारा के किनारे तप कर रहे किसी महात्मा के पास पहुँचे। उन्होंने महात्मा को प्रणाम किया। महात्मा ने जयप्रकाश जी को देखकर गहरी साँस ली।

जय प्रकाश जी ने पूछा कि कोई गलती हुई है महाराज! तो महात्मा ने कहा—"ऐसा कुछ नहीं है, पर मुझे दिखाई दे रहा है कि पंद्रह दिन बाद तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी।" जयप्रकाश जी ने महात्मा की यह बात साथ आई पत्नी और बड़े पुत्र से कही। वे लोग वापस उन्हीं महात्मा के पास गए और असमय मृत्यु से छुटकारा पाने का उपाय पूछने लगे। उन महात्मा ने कहा—"संत वामाक्षेपा ही तुम्हें इस संकट से छुटकारा दिला सकते हैं। तुम लोग उन्हीं के पास जाओ और उन्हीं का आशीर्वाद प्राप्त करो।" जयप्रकाश जी और उनका परिवार संत वामाक्षेपा का पता पूछकर गिरते-पड़ते तारापुर पहुँचे।

राधाकांत ने लिखा है कि उन संत ने बाबा जी को देखते ही पहचान लिया। बाबा जी प्रणाम करें इसके पहले कह दिया कि मृत्यु तुम्हारा पीछा कर रही है। तीन दिन और बचे हैं। बाबा जी और दादी आदि ने वामाक्षेपा के चरण पकड़ लिए। वामा ने कहा—"वह देखो, तुम्हारे पीछे काल पहुँच गया है।"

उन लोगों ने पीछे मुड़कर देखा एक विषधर सर्प फन फैलाए बैठा था। वामा ने उसकी ओर अपने तेजस्वी नेत्रों से देखा। सर्प कुंडली खोलकर वापस चला गया। उन लोगों ने अभय का अनुभव किया, लेकिन वामा ने सावधान किया—"अभी बेफिक्र नहीं हो जाना है। आधी रात को साँप फिर आएगा और तुम्हें डसने की कोशिश करेगा। तुम आदिशक्ति की आराधना करना। संकट दूर हो जाएगा।"

जयप्रकाश जी और उनके परिवारवालों ने समझा संत वामा तारा देवी की आराधना के लिए कह रहे हैं। उनकी आराधना और मंत्र आदि तो आते नहीं हैं। उन्होंने आराधना-विधि पूछी।

संत ने कहा—"आदिशक्ति यानी गायत्री। गायत्री मंत्र तो आता है न? नहीं आता है तो बता दूँ। स्नान आदि से निवृत्त होकर चुपचाप जप करते रहना है। प्रत्यक्ष अनुभव होगा।" सचमुच ऐसा ही हुआ। जयप्रकाश जी और उनके परिवार के लोग गायत्री का जप कर रहे थे।

जप करते-करते आधी रात हो गई। परिवार के सभी लोग जाग रहे थे। ठीक मध्य रात्रि के समय उन्होंने देखा कि एक भयानक विषधर बिजली की गति से रेंगता हुआ आ रहा है। जिस मकान में परिवार ठहरा था, वहाँ बाहर पहरा लगा दिया था।

पहरे पर नियुक्त लोगों ने साँप को देखते ही लाठियाँ उठाईं और मारने दौड़े, लेकिन सर्प उनके प्रहार से बचता हुआ उसी गति से आराधना कक्ष में चला गया। रोकने वालों को भी समझ नहीं आया कि उनके प्रहार का कोई असर क्यों नहीं हुआ?

कक्ष में जहाँ और लोग गायत्री जप कर रहे थे, सर्प ने विद्युत की गति से प्रवेश किया और परिवार के लोगों को देखकर आश्चर्य हुआ कि वहाँ पहुँचते ही नाग की गति कम हो गई है। अचानक वह रुक गया है और निष्क्रिय-निश्चेष्ट हो गया है।

उसकी मृत्यु हो गई थी। उसकी मृतकाया से फिर एक धूम्र-ज्योति निकलती दिखाई दी। वह ज्योति मानव-आकृति में बदली और वहाँ से तिरोहित हो गई।

सुबह होने पर वामाक्षेपा स्वयं उस स्थान पर आए और कहा—"अब तुम्हारा संकट दूर हो गया। यह सर्प सात पीढ़ियों पहले का तुम्हारा पूर्वज है। अभी तक मुक्ति नहीं मिल रही थी, इसलिए कुपित था। आदिशक्ति की आराधना ने उसे भी सद्‌गति दे दी है और तुम लोगों को भी भयमुक्त कर दिया है। स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर माँ तारा के पास आना।" जयप्रकाश जी का परिवार सुबह नौ बजे के करीब तारापीठ गया। वहाँ संत वामा के सान्निध्य में कुछ समय रहा।

वामा ने भगवती तारा के चरणों में समर्पित फूल उठाया और कहा—"इसे अपने इष्ट को चढ़ाना। जयप्रकाश तुम तो तब नहीं रहोगे, लेकिन अपने पुत्र-पौत्रों से कहना कि ठाकुर (रामकृष्ण परमहंस देव) उनके समय में अपनी लीला का विस्तार करने लगेंगे। उनके सहचर बनने की कोशिश करना। पंद्रह-बीस साल पहले ठाकुर ने शरीर छोड़ा था। अब यमुना के पास उन्होंने नया शरीर धारण कर लिया है और पचास-पचपन साल बाद वे मथुरा में ही माँ का एक पीठ बना रहे होंगे। तुम्हारी पीढ़ी में उस समय जो भी कोई हो, वह उनकी सेवा करे। (क्रमशः)

चंदा वृद्धि की सूचना

हमारे अखण्ड ज्योति पत्रिका के परिजन-पाठकों को हमें बड़े भारी मन से सूचित करना पड़ रहा है कि कागज के मूल्यों एवं छपाई के अन्य साधनों के मूल्यों में बेतहाशा वृद्धि होने के कारणों से अखण्ड ज्योति का चंदा (सदस्यता शुल्क) जनवरी—2023 से बढ़ाना पड़ रहा है। बढ़ी हुई दरें इस प्रकार से हैं—

1. वार्षिक चंदा (भारत में)	**300 रुपये**
2. आजीवन 20वर्षीय चंदा (भारत में)	**6000 रुपये**
3. वार्षिक चंदा (विदेश में)	**2800 रुपये**

अँगरेजी द्विमासिक अखण्ड ज्योति पत्रिका की बढ़ी हुई दरें—

1. वार्षिक चंदा (भारत में)	**170 रुपये**
2. वार्षिक चंदा (विदेश में)	**1500 रुपये**

संस्कृत भाषा की उपादेयता

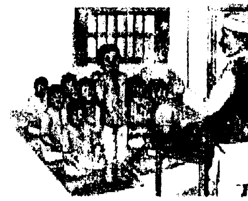

संस्कृत दिव्य एवं समृद्ध भाषा है। ऐतिहासिकता की दृष्टि में यह संसार की सभी भाषाओं की जननी है। संस्कृत संसार की प्राचीनतम एवं प्रथम भाषा है। भारतीय आर्ष ग्रंथ का समस्त ज्ञान इसी भाषा में लिपिबद्ध है। संस्कृत ज्ञान की अभिव्यक्ति की भाषा है।

भारत की आत्मा संस्कृत है। यदि आज के पाठ्यक्रम के साथ संस्कृत का संबंध स्थापित कर लिया जाए तो संस्कृत परिवर्द्धित होगी। संस्कृत में जोड़ने की शक्ति है, इसलिए इसे बढ़ावा दिया जाना चाहिए। सन् 1994 में सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय दिया था कि संस्कृत शिक्षा का एक अविभाज्य भाग होना चाहिए।

सृष्टि के आदिकाल में हमें जो ज्ञान प्राप्त हुआ था, वह ज्ञान आज भी विश्व में स्वीकृत प्राचीनतम ज्ञानग्रंथ है। ब्राह्मण ग्रंथ गृहस्थ जीवन और समस्त संस्कारों का आधार है। दर्शन शास्त्र सत्यासत्य का निर्णायक है; जबकि व्याकरण शास्त्र सम्यक भाषा व्यवहार और शब्द राशियों की सहज कुंजी है। रामायण भारतीय मर्यादा का प्रतीक है। गीता कर्ममय ज्ञान का उपदेश देती है तो मनुस्मृति व्यवस्थित शासन व आत्मानुशासन की संस्थापक है। आयुर्वेद समस्त प्राणियों को आरोग्य प्रदान करने वाला है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र राजसत्ता को विधिसम्मत बनाता है।

भारत का यह सारा अमृततुल्य ज्ञान जिस भाषा में व्यक्त हुआ वह संस्कृत है। जहाँ विश्व के दूसरे देश भारत के इस अमरत्व को जानने के लिए संस्कृत भाषा और साहित्य का अध्ययन कर रहे हैं वहीं विडंबना यह है कि अपने देश में संस्कृत के अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है।

20वीं सदी से संस्कृत के अध्ययन में कमी आई है। 2011 जनगणना के अनुसार 14,135 व्यक्तियों ने संस्कृत भाषा को अपनी मातृभाषा माना है। 1991 में 49,736 लोग संस्कृत को अपनी मातृभाषा मानते थे। 1991 से 2001 के बीच ऐसे लोगों की संख्या में 71.58 फीसद की कमी आई है। उत्तर प्रदेश में संस्कृत बोलने और समझने वालों की संख्या सर्वाधिक है।

उत्तर प्रदेश में कुल 7048 लोग संस्कृत को समझते हैं, जिनमें 3856 पुरुष व 3192 महिलाएँ हैं। आंध्र प्रदेश में 1340 लोगों में 884 पुरुष एवं 456 महिलाएँ संस्कृत की जानकार हैं। सन् 1991 में संविधान द्वारा स्वीकृत 22 भाषाओं में संस्कृत भाषा 20वें स्थान पर थी; जबकि सन् 2001 में 22वें स्थान पर रही। ये आँकड़े संस्कृत के प्रति उपेक्षा भाव को प्रदर्शित करते हैं।

भारतीय जनगणना नीति के अनुसार यदि किसी भाषा को बोलने वालों की संख्या 1,00000 से कम है तो वह भाषा अपनी उपस्थिति पृथक भाषा के रूप में दर्ज नहीं करा सकती। संस्कृत भाषा भले ही 22वें पायदान पर हो, पर उसकी महत्ता और शक्ति को संपूर्ण देश भली भाँति जानता है। संस्कृत की उक्तियों को हम अपना आदर्श वाक्य मानते हैं।

उदाहरण के लिए भारतीय गणराज्य—सत्यमेव जयते, सुप्रीम कोर्ट—यतोधर्मस्ततो जयः, इंडियन नेवी—शं नो वरुणः, एअर फोर्स—नभः स्पृशं दीप्तम्, आल इंडिया रेडियो—बहुजन हिताय,

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

बहुजन सुखाय अपना आदर्श वाक्य मानते हैं। भारत ही नहीं इंडोनेशिया—पन्चचित, इंडोनेशियन नेवी—जलेष्वेव जयामहे, नेपाल—जननी जन्मभूमि: स्वर्गादपि वाक्यांश को अपना आदर्श वाक्य मानते हैं।

आज कोई संस्कृत पढ़ना नहीं चाहता। इसे केवल कर्मकांड और पूजा-पाठ की भाषा माना जा रहा है। वर्तमान समय में संस्कृत की उपयोगिता हमारे देश में कम और विदेशों में ज्यादा है। अमेरिका के लगभग हर विश्वविद्यालय में संस्कृत पढ़ाई जा रही है। अमेरिका में बच्चों को बचपन से ही संस्कृत की शिक्षा दी जाती है। हम अँगरेजी को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं। यह हमारे पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण का परिणाम है, अन्यथा जो स्थान संस्कृत का था, वह अँगरेजी का कैसे हो गया?

जब दुनिया का हर देश अपनी भाषा में बात करता है तो क्यों हम अपनी भाषा को समाप्त करने पर तुले हुए हैं। हम बड़ा बनने की बात करते हैं, पर श्रेष्ठ मानव बनना भूलते जा रहे हैं। हमारे नीति-निर्माताओं की दृष्टि और सोच इस विषय की ओर जाना चाहिए।

एक समय भारत में जहाँ मुकदमे भी संस्कृत भाषा में लड़े जाते थे, उसी देश में आज संस्कृत को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। हमारे देश में संस्कृत भाषा को समाप्त करने की यह सोची-समझी साजिश है।

नासा की वेबसाइट पर लिखा है कि संस्कृत कंप्यूटर के लिए एक अच्छी भाषा है। इसे प्रोग्रामिंग के लिए, आर्टिफीशिअल इंटेलीजेंस के तौर पर प्रयोग किया जा रहा है। आज संस्कृत की जो समस्या है, वह पुराने ज्ञान को बचाने की है। इसके लिए इस तरह का पाठयक्रम तैयार किया जाए कि आठवीं कक्षा तक संस्कृत की पढ़ाई अनिवार्य बने। संस्कृत विद्यापीठ की तरह मध्यमा, प्रथमा, शास्त्री, आचार्य श्रेणी उत्तीर्ण की जाए। पाठ्यक्रम का निर्धारण इस प्रकार किया जाए कि छात्रों की रुचि बनी रहे।

प्राइमरी स्तर से संस्कृत सीखने की संस्थाएँ स्थापित की जानी चाहिए। संस्थाएँ अच्छी तरह से कार्य कर पाएँ, इसके लिए कुछ अतिरिक्त धन पांडुलिपियों के प्रकाशन, संस्कृत पुस्तकों के प्रकाशन आदि के लिए दिया जाना चाहिए। संस्कृत भाषा को केवल संस्कृत पाठशालाओं एवं संस्कृत महाविद्यालयों तक ही सीमित न करके सभी स्कूलों, प्राविधिक विश्वविद्यालयों, मेडिकल एवं इंजीनियरिंग संस्थानों, पुलिस, प्रशासनिक शिक्षण केंद्रों, प्रबंधन संस्थानों तक इसका विस्तार किया जाए। संस्कृत छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान की जाए। संस्कृत सभी राज्यों की द्वितीय, तृतीय भाषा घोषित हो। संस्कृत भाषा सभी स्कूलों, प्राविधिक संस्थानों आदि में इस तरह पढ़ाई जाए, जिससे अच्छे शिक्षक तैयार हो सकें।

जीवन-निर्वाह के लिए दूसरों के सहारे रहना पराधीनता है। इसी तरह मन और बुद्धि को ताला लगाकर किसी बात को-किसी विचार को मान लेना भी मानसिक पराधीनता है, विचारों की गुलामी। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

संस्कृत भाषा धार्मिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक दृष्टि से समृद्ध भाषा है। संस्कृत साहित्य में जीवन जीने की कला का विस्तृत एवं व्यापक वर्णन मिलता है। जीवन को जानने- समझने के लिए इस भाषा को जानना चाहिए। अत: इसका पठन-पाठन होना चाहिए। संस्कृत भाषा ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जो न केवल वैयक्तिक रूप से हमें विकसित करती है, बल्कि यह हमें राष्ट्रीय एकता, समता एवं सौहार्द का परिचय प्रदान करती है। अत: इसका प्रचार-प्रसार करना चाहिए। ❑

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार-167

दमे का यौगिक उपचार

भारतीय पारंपरिक एवं वैकल्पिक चिकित्सा प्रणालियों में योग चिकित्सा का अपना एक अलग स्थान और महत्त्व है। यह विधि चिकित्सा की दृष्टि से केवल रोगोपचार तक ही सीमित नहीं है, अपितु स्वास्थ्य संरक्षण, स्वास्थ्य विकास एवं स्वास्थ्य प्रबंधन के लिए भी यह अत्यधिक उपयुक्त और प्रभावी उपाय साबित हुई है। यही कारण है कि देश-दुनिया में वर्तमान में योगाभ्यास के साथ-साथ योग-चिकित्सा के प्रति भी विश्वास और रुचि बढ़ रही है।

एक अन्य कारण इस बढ़ती रुचि और विश्वास का यह भी है कि योग एक समग्र उपचारपद्धति भी है। इसमें शरीर, मन और आत्मा अर्थात संपूर्ण व्यक्तित्व और जीवन को आरोग्य प्रदान करने की अद्भुत सामर्थ्य है। योग चिकित्सा के महत्त्व, प्रभाव और आज के समय की माँग के अनुरूप व्यापक स्तर पर इस दिशा में शोध-अनुसंधान के कार्यों को संपन्न किया जा रहा है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में प्रारंभ से ही योग चिकित्सा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। देश-विदेश से शोध करने के उद्देश्य से यहाँ आकर शोधार्थी निरंतर शोधकार्य करते रहे हैं। इन शोधों की विशिष्ट उपलब्धियों और सफलताओं को समय-समय पर पत्रिका के इस स्तंभ में प्रस्तुत किया जाता रहा है। इसी क्रम में यहाँ विगत दिनों संपन्न किए गए एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

यह शोध अध्ययन वर्ष—2012 में विश्वविद्यालय के मानव चेतना एवं योग विज्ञान विभाग के अंतर्गत शोधार्थी सरिता प्रजापति द्वारा संपन्न किया गया है। इस अध्ययन का विषय है—**'ए स्टडी ऑफ दि मैनेजमेंट ऑफ साइको-फिजियोलॉजिकल आसपेक्ट ऑफ ब्रोन्कियल अस्थमा थ्रो योगा थैरेपी-ए इम्पिरिकल स्टडी।'** यह महत्त्वपूर्ण अध्ययन विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण में डॉ० ए० के० दत्ता के निर्देशन व प्रो० ओ० पी० मिश्रा के सह-निर्देशन में पूरा किया गया है।

अध्ययन में जिस रोग को शोधकार्य के लिए चयनित किया गया है, वह एक व्यापक और गंभीर तरह का रोग है, जिसके लिए रोगी को उम्र भर देख-भाल और उपचार की आवश्यकता होती है। यह रोग है—ब्रोन्कियल अस्थमा (दमा), जो हमारी श्वासनलिकाओं से संबंधित रोग होता है और फेफड़ों की कार्यक्षमता को प्रभावित कर मुख्य श्वसन मार्ग को प्रभावित करता है।

इसके उत्पन्न होने के प्रमुख कारणों में एलर्जी, व्यायाम आदि से उत्पन्न तथा पारिवारिक स्थिति एवं मानसिक स्वास्थ्य की स्थिति आते हैं, परंतु कई बार यह कार्यस्थल का वातावरण, औषधियाँ आदि अन्य बाह्य कारणों से भी उत्पन्न हो जाता है। इस रोग की चपेट में आ जाने पर प्राय: जो लक्षण सामने आते हैं, वे हैं—साँस लेने में कठिनाई, घरघराहट, सीने में जकड़न, व्यायाम के समय श्वास फूलना, थकान, अधिक खाँसी, रात में व सुबह के समय अधिक खाँसी, ठंढी हवा का अथवा मौसम-परिवर्तन का श्वसन-क्रिया पर प्रभाव, सूखी अथवा बलगम वाली खाँसी आदि।

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

इस रोग के गंभीर होने पर मृत्यु तक हो जाती है, अत: समय रहते इसके निदान एवं सावधानीपूर्वक समुचित उपचार की आवश्यकता होती है। इसके उपचार की वर्तमान में जो प्रभावी तकनीक है, वह एलोपैथिक औषधियाँ ही हैं, जिन्हें इन्हेलर अर्थात एक नेबुलाइजर के माध्यम से प्रदान किया जाता है, परंतु यह भी उपचार का स्थायी अथवा संपूर्ण समाधान न होकर केवल गंभीर अवस्था में रोग को पहुँचने से रोकने का एक वैकल्पिक उपाय मात्र है। ऐसे में योग चिकित्सा के अंतर्गत इस समस्या का समग्र उपचार एवं प्रबंधन खोजना एक क्रांतिकारी और सराहनीय पहल है।

इस अध्ययन के प्रयोग को पूरा करने के लिए शोधार्थी ने 80 ऐसे लोगों को चयनित किया, जो ब्रॉन्कियल अस्थमा से पीड़ित थे। इन सभी की आयु 18 से 60 वर्ष मध्य थी। इस प्रयोग को संपन्न करने के लिए विश्वविद्यालय के ही समग्र स्वास्थ्य प्रबंधन विभाग के अंतर्गत आयोजित किए जाने वाले योगा कैंप को माध्यम बनाया गया। प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व सभी चयनितों का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया।

स्वास्थ्य परीक्षण हेतु जिन उपकरणों को प्रयुक्त किया गया, वे हैं—

(1) डॉ० तेजिंदर कौर, डॉ० प्रेरणा पुरी एवं प्रो० मंजु मेहता द्वारा निर्मित स्ट्रेस स्केल,

(2) ए० के० पी० सिन्हा एवं एल० एन० के० सिन्हा द्वारा निर्मित सिन्हास् काम्प्रेहिसिव एन्जायटी टेस्ट,

(3) प्रो० ओ० पी० मिश्रा, डॉ० विद्याभूषण वर्मा तथा संतोष कुमार द्वारा निर्मित डिप्रेशन टेस्ट।

इन मनोवैज्ञानिक उपकरणों के साथ-साथ लैब के जिन उपकरणों की परीक्षण में सहायता ली गई, वे हैं—

(1) रेस्पिरेटरी रेट मापन

(2) स्फिग्मोमेनोमीटर(ब्लडप्रेशर मापन हेतु),

(3) पल्स रेट मापन हेतु तथ्यों के संग्रहण की सामग्री।

(4)वेस्टरग्रीन ई० एस० आर० ट्यूब (इरीथ्रोसाइट सेन्डीमेन्टेशन रेट मापन हेतु),

(5) मारक्रोस्कॉप, स्लाइड्स, ग्लास स्प्रीडर (स्नोफिलस मापन हेतु) तथा

(6) लंग फंक्शन हेतु मेडस्पीरर।

परीक्षण के पश्चात दो माह की अवधि तक नियमित प्रात: 45 मिनट तक विशेष रूप से यौगिक क्रियाओं का अभ्यास कराया गया। योगाभ्यास के लिए शोधार्थी द्वारा जिन योग तकनीकों को अपने योग चिकित्सा मॉडल में सम्मिलित किया गया, वे हैं—

(1) क्लिंजिंग तकनीक—दंत धौती 5 मिनट,

(2) आसन (ताड़ासन, तिर्यकताड़ासन, कटिचक्रासन व मार्जारी आसन) 10 मिनट,

(3) प्राणायाम (नाड़ीशोधन एवं भस्त्रिका) 25 मिनट,

(4) मंत्रयोग (गायत्री मंत्र)—5 मिनट तथा अभ्यास के अंत में तीन बार ओम् का उच्चारण।

प्रयोग की अवधि समाप्त होने पर पूर्व की भाँति पुन: सभी चयनितों का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। दोनों परीक्षण से प्राप्त आँकड़ों एवं तथ्यों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोध परिणाम के रूप में यह पाया गया कि चयनित योगाभ्यास का ब्रोन्कियल अस्थमा के रोगियों पर, उनके मनोशारीरिक पहलुओं पर सकारात्मक एवं सार्थक प्रभाव पड़ता है।

इसके साथ ही अस्थमा के प्रभाव एवं लक्षणों में सार्थक कमी भी आती है। अत: निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि योगाभ्यास के रूप में

योग चिकित्सा को ब्रोन्कियल अस्थमा के उपचार एवं प्रबंधन में एक कारगर प्रणाली के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। इस शोध अध्ययन के निष्कर्ष में सकारात्मक एवं सार्थक परिणामों का मूल कारण योग चिकित्सा में प्रयुक्त विशिष्ट यौगिक तकनीकें हैं।

पहली तकनीक षट्कर्म की है, जिसके माध्यम से शारीरिक एवं प्राणिक मलशुद्धि कर वात, पित्त और कफ की स्थिति में संतुलन उत्पन्न किया जाता है। इस अध्ययन में इस क्रिया के अंतर्गत दंतधौती को अभ्यास में सम्मिलित किया गया है।

दंतधौती के अंतर्गत जिह्वामूल, कर्णरंध्र एवं कपालरंध्र के शुद्धि की विशिष्ट प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं। इसके अभ्यास से कफ संबंधी विकार पर नियंत्रण, श्वास नली की रुकावटों का शमन तथा गले संबंधी संक्रमणों से बचाव की क्षमता विकसित होती है।

योगाभ्यास में सम्मिलित दूसरी विशिष्ट यौगिक तकनीक है—योगासन। इस अध्ययन में चार उपयुक्त आसनों का रोगियों को नियमित अभ्यास कराया गया, जिसमें ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटिचक्रासन खड़े रहकर किए जाते हैं तथा मार्जारी आसन बैठकर किया जाने वाला आसन है।

इन आसनों के अभ्यास से मेरुदंड में लचीलापन उत्पन्न होता है, जिसका सीधा प्रभाव मानसिक संतुलन पर पड़ता है। पसलियों और उससे जुड़ी मांसपेशियों में लचीलापन और कार्यक्षमता का विकास होता है, जिससे शारीरिक और मानसिक तनाव को कम करने में सहायता मिलती है।

तीसरी यौगिक तकनीक प्राणायाम है। इस अध्ययन में नाड़ीशोधन एवं भस्त्रिका प्राणायाम का अभ्यास सम्मिलित किया गया है। नाड़ीशोधन प्राणायाम के नियमित अभ्यास से संपूर्ण श्वसन तंत्र में शुद्धता उत्पन्न होती है। इसके साथ ही मस्तिष्कीय कार्यक्षमता बढ़ती है व सजगता का विकास होता है। भस्त्रिका के अभ्यास से शरीर एवं प्राण के टाक्सिन्स को बाहर निकालने में सहायता मिलती है।

साथ ही वात, पित्त और कफ के दुष्प्रभावों का शमन होता है तथा फेफड़ों की कार्यक्षमता विकसित हो ज्यादा ऑक्सीजन ग्रहण करने की क्षमता प्राप्त होती है। यह मेटाबोलिक रेट को उत्प्रेरित कर पाचन संस्थान को सुदृढ़ बनाता है।

यह प्राणायाम अस्थमा के रोगी के लिए सर्वाधिक उपयुक्त और प्रभावकारी सिद्ध होता है; क्योंकि इसका सीधा प्रभाव श्वासनली और फेफड़ों को स्वस्थ और क्षमतावान बनाने के रूप में सामने आता है। यह गले की सूजन अथवा अन्य संक्रमण के बचाव में भी लाभकारी सिद्ध होता है।

योगाभ्यास का अंतिम सोपान मंत्रयोग की तकनीक है। इसके अंतर्गत गायत्री मंत्र-साधना को सम्मिलित किया गया है। यह दिव्य मंत्र है, जिसे वेदों की माता के रूप में प्रतिष्ठित गायत्री शक्ति का स्वरूप माना जाता है। इस मंत्र के प्रत्येक शब्द को बीजमंत्र कहा गया है।

भावों की दृष्टि से यह मंत्र सत्यचिंतन एवं सद्भावना की एक श्रेष्ठतम और प्रभावकारी प्रार्थना है। आध्यात्मिक, भावनात्मक, मानसिक और शारीरिक व्यक्तित्व के सभी स्तरों पर गायत्री मंत्र-साधना का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है और जीवनीशक्ति एवं आंतरिक चेतना विकसित होकर जीवन को रूपांतरित कर देते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टि से मंत्र का उच्चारण ध्वनि तरंग की शक्ति और ऊर्जा के रूप में हमारे सभी आंतरिक मनोशारीरिक संस्थानों पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। तनाव, चिंता, अवसाद जैसी

मनोव्याधियों से बाहर आने के लिए गायत्री मंत्र का नियमित अभ्यास सर्वाधिक उपयुक्त और कारगर उपाय है।

इस मंत्र-साधना से लौकिक और आध्यात्मिक, दोनों तरह के लक्ष्य सिद्ध होते हैं। योग चिकित्सा के क्षेत्र में इस मंत्र-साधना का प्रयोग न केवल रोगों के समाधान के लिए अपितु संपूर्ण रूप से आरोग्यप्राप्ति व पुनः व्यक्तित्व को क्षमतावान बनाने की दृष्टि से भी प्रभावी सिद्ध हुआ है।

अस्थमा के यौगिक प्रबंधन में भी निस्संदेह गायत्री मंत्र-साधना की महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावी भूमिका है। यह अध्ययन योग चिकित्सा के एक नवीन और प्रभावी मॉडल को प्रस्तुत करता है, जिसका संबंध ब्रॉन्कियल अस्थमा तथा अन्य श्वास व फेफड़ों से संबंधित रोगों के उपचार एवं प्रबंधन में उपयोग किया जा सकता है। वर्तमान समय में प्रदूषण, खान-पान में परिवर्तन व जीवनशैली की विसंगतियों से अनेक तरह की घातक बीमारियाँ निरंतर बढ़ती जा रही हैं। साथ ही चिकित्सा-उपचार की दृष्टि से सभी पर आधुनिक चिकित्सा उतनी ज्यादा कारगर एवं प्रभावी भी सिद्ध नहीं हो पाती है। ऐसे में एक समर्थ विकल्प के रूप में योग चिकित्सा को स्वास्थ्य-संवर्द्धन की सर्वथा उपयुक्त तकनीक के रूप में सभी को स्वीकार कर अन्यों को भी इस ओर प्रेरित करना चाहिए। ❑

वाल्मीकि रामायण में कथा आती है कि एक बार एक कुत्ता भगवान राम के दरबार में अपनी समस्या लेकर पहुँचा। उसने भगवान राम से कहा—"प्रभु! मुझे नगर के एक ब्राह्मण ने अकारण ही डंडे से मारा और प्रताड़ित किया है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि उसे कलिंजर पीठ का महंत बना दीजिए।" भगवान राम बोले—"पर उसने तुम्हारे साथ दुर्व्यवहार किया है तो सजा के बदले उसके लिए पुरस्कार की चाह क्यों?"

कुत्ता बोला—"भगवन्! मैं पूर्वजन्म में कलिंजर का महंत ही था। मैंने जीवन भर सदाचरण किया, दान की संपत्ति का निजी कार्यों में उपभोग नहीं किया, पर एक बार मुझसे भूलवश मंदिर में चढ़ाए गए घी का उपयोग अपने भोजन में डालने हेतु हो गया। आज उसी के प्रायश्चितस्वरूप इस श्वान योनि में मेरा जन्म हुआ है। फिर यह व्यक्ति तो स्वभाव से ही दुराचारी और उच्छृंखल है। इसका क्या परिणाम होगा, यह आप से अच्छा कौन जान सकता है।" दायित्वपूर्ण स्थानों पर आसीन व्यक्तियों को सदा पद की गरिमा और मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए अन्यथा पतन होते देर नहीं लगती।

विशालकाय वृक्षों का अद्भुत संसार

वृक्ष इस विश्व की सुंदरतम रचनाओं में से एक हैं, प्रकृति का विशिष्ट उपहार हैं। एक ओर वे वायुमंडल में प्राणवायु का उत्सर्जन कर जीवन का आधार बनते हैं, संसार के सौंदर्य में चार-चाँद लगाते हैं तो वहीं अपने विशाल आकार एवं अद्भुत विशेषताओं से सभी को चकित भी करते हैं। यहाँ इसी तरह के विराट, विशाल, सबसे ऊँचे एवं अद्भुत वृक्षों की चर्चा की जा रही है।

जब विश्व के सबसे उम्रदराज वृक्षों की बात की जाती है, तो दक्षिण चिली के अलर्स कोस्तेरो नेशनल पार्क में विश्व का सबसे पुराना वृक्ष विद्यमान है। यह एक साइप्रस या सरु का पेड़ है, जिसे सनौवर भी कहते हैं। इसकी आयु 5484 वर्ष आँकी जा रही है, इसीलिए वैज्ञानिक इसे ग्रेट ग्रैंडफादर भी कहकर पुकारते हैं। आश्चर्य नहीं कि इस पेड़ के ऊपर कई तरह के एल्गी और फंगस भी लगे हुए हैं। इस वृक्ष की खोज विगत वर्ष-2022 के मई माह में हुई है।

इससे पूर्व कैलिफोर्निया के व्हाइट माउटेंस में स्थित मेथुसेलाह वृक्ष को सबसे पुराना वृक्ष माना जाता था, जो ब्रिस्टलकोन पाइन प्रजाति का 4853 वर्ष पुराना वृक्ष है। इस प्रजाति के वृक्ष प्रायः लंबी आयु लिए होते हैं, कारण इनकी विषम परिस्थितियों में भी बढ़ते रहने की क्षमता है। वे ऐसी भूमि पर भी उगते हैं, जहाँ दूसरे वृक्ष विकास के लिए संघर्ष करते हैं। इनके जंगल बहुत सघन होते हैं तथा इनके वृक्ष 90 प्रतिशत तक छाल उतरने के बाद भी जीवित रहते हैं। आश्चर्य नहीं कि मेथुसेलाह नामक इस प्रजाति का वृक्ष विश्व के सबसे उम्रदराज वृक्षों में शीर्ष पर है।

इसी तरह एशिया का सबसे पुराना वृक्ष—सर्व-ए-अबरकुह है। यह भी एक प्राचीन साइप्रस या सरु का वृक्ष है, जो ईरान के अबरकुह में स्थित है, इसे 4000 से 5000 वर्षों पुराना माना जाता है। इसकी ऊँचाई 25 मीटर और व्यास 11.5 मीटर है। ईरान के इतिहास और संस्कृति में इस वृक्ष का विशेष महत्त्व रहा है।

यहाँ की कविताओं व शिल्प में इसका उपयोग होता रहा है। इसे जीवन और सौंदर्य का प्रतीक माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि इस वृक्ष को पारसी धर्म के संस्थापक पैगंबर जरथुस्त्र ने अपनी शिक्षाओं के प्रसार के निमित्त हुई यात्राओं के दौरान लगाया था। इस तरह सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व का यह वृक्ष विश्व के सबसे प्राचीन वृक्षों में शामिल है।

विश्व का सबसे पुरातन मल्टी स्टेम वृक्ष पांडो है। इसे ट्रेंबलिंग जाइंट अर्थात काँपता हुआ विशालकाय वृक्ष भी कहा जाता है। वास्तव में पांडो एक अकेला वृक्ष नहीं है, बल्कि कई तनों से मिलकर बना हुआ एक समान जड़ों से जुड़ा हुआ वृक्षों का समूह है।

यह कोलोराडो पठार के पश्चिमी किनारे पर आता है। यह वृक्ष एक ही वृक्ष की क्लोनल कॉलोनी है, जिसे हजारों वर्ष पुराना माना जाता है। इसमें 50

हजार वृक्ष एक साथ जुड़े हुए हैं, जो 108 एकड़ भू-भाग में फैला हुआ है, 60 लाख किलो वजन लिए हुए है।

इसे प्रकृति की एक प्रभावशाली उपलब्धि के रूप में देखा जाता है। सूखा, मानवीय विकास, चारा और अग्नि जैसे खतरे इसकी दीर्घायु के लिए चुनौती बने हुए हैं, हालाँकि वर्तमान में यह प्रकृति की अद्भुत संरचना है, जिसे विश्व का सबसे बड़ा ज्ञात जीवित जीव माना जाता है।

जब हम सबसे ऊँचे वृक्षों की बात करते हैं, तो कैलिफोर्निया के जंगल में स्थित हाइपेरियन का नाम आता है, जो एक तटीय रेडवुड वृक्ष है। यह कैलिफोर्निया के नेशनल पार्क में स्थित है व आस-पास के सभी वृक्षों को बौना साबित करता है।

इसकी ऊँचाई 380 फीट (115.7 मीटर) है व इसे 700 से 800 वर्ष पुराना माना जाता है। मानव-निर्मित भवनों से इसकी तुलना करें, तो यह वृक्ष कुतुबमीनार(240 फीट) से 140 फीट ऊँचा है। अमेरिकी संसद भवन और स्टेच्यू ऑफ लिबर्टी (305 फीट) भी इसके आगे बौने नजर आते हैं। इस वृक्ष की खोज वर्ष—2006 में हुई थी व इसे विश्व के सबसे ऊँचे वृक्ष के रूप में पहचान मिली थी।

इसी श्रृंखला में एशिया का सबसे ऊँचा वृक्ष, दि मेनार है। इसे विश्व का दूसरा सबसे ऊँचा वृक्ष माना जाता है। यह येलो मेरांति वृक्ष है, जिसे मलय शब्द टावर के आधार पर मेनार नाम दिया गया है, यह बोर्नियो के टापू में सबह स्थान पर है।

इसकी ऊँचाई 331 फीट (100.8 मीटर) है। यह समरूपता लिए हुए सीधा खड़ा है। अत्यधिक कटाई के कारण येलो मेरांति एक अतिदुर्लभ वृक्ष है। हालाँकि सुखद बात यह है कि यहाँ चल रहे संरक्षण प्रयास के कारण ये सुरक्षित हैं व दि मेनार विश्व में अपनी विशिष्ट पहचान के संग तनकर खड़ा है।

जब हम फूलदार सबसे ऊँचे पेड़ की बात करते हैं, तो विश्व का सबसे ऊँचा वृक्ष यूकालिप्टस प्रजाति का दि सेंचुरियन आता है। 330 फीट की ऊँचाई लिए ऑस्ट्रेलिया के तस्मानिया में स्थित दि सेंचुरियन वृक्ष के हिस्से में कई कीर्तिमान दर्ज हैं। यह सबसे ऊँचा फूलदार पेड़ है और सबसे ऊँचा सख्त लकड़ी का हार्डवुड वृक्ष भी है। इस क्षेत्र में 2019 के भीषण वन-अग्निकांड में यह वृक्ष बाल-बाल बचा है।

सबसे विशाल वृक्षों की श्रेणी में जनरल शेरमन प्रमुख है, जो सेकुआ नेशनल पार्क में विशालकाय वन में स्थित है। यह 52,500 क्यूबिक फीट (147 घनमीटर) का घनत्व लिए हुए है। इसकी कई टहनियाँ तो आस-पास पाए जाने वाले वृक्षों के मुख्य तनों से भी बड़ी हैं। अपनी वृहद चौड़ाई, ऊँचाई और आयु के साथ यह वृक्ष दर्शकों को विस्मित करता है।

इस वृहद वृक्ष की आयु और इसके महत्त्व को देखते हुए इसका नाम सन् 1879 में अमेरिकी गृहयुद्ध के जनरल विलियम टेकुमसेह शर्मन के नाम पर रखा गया, पहले से ही इसे विश्व के सबसे बड़े वृक्षों में से एक माना जाता था। 84 मीटर ऊँचाई लिए हुए इस वृक्ष की अनुमानित आयु 2300 से 2700 वर्ष है।

भारत में कोलकाता का बरगद का विशाल वृक्ष विश्व का सबसे बड़ा बरगद का वृक्ष है, जो स्वयं में पूरा जंगल लगता है। यह बरगद का वृक्ष

250 वर्ष पुराना है। इसकी इतनी सारी जड़ों और बड़ी-बड़ी शाखाओं को देखकर लगता है कि जैसे हम किसी जंगल में आ गए हों। 14,500 वर्ग मीटर में फैला यह वृक्ष लगभग 24 मीटर ऊँचा है।

इसकी तीन हजार से अधिक जटाएँ हैं, जो अब जड़ों का रूप ले चुकी हैं। इस कारण इसे विश्व का सबसे चौड़ा चलता-फिरता पेड़ (वॉकिंग ट्री) भी कहा जाता है। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि इस वृक्ष में 80 से अधिक प्रजातियों के पक्षियों का रैनबसेरा है।

इस तरह वृक्षों का यह अद्भुत संसार जिज्ञासु इनसान को जहाँ विस्मित करता है, वहीं प्रेरणा भी देता है कि इनका अधिक-से-अधिक रोपण किया जाए।

मालूम हो कि एक पेड़ वर्ष भर में लगभग 20 किलोग्राम धूल और 20 टन कार्बन-डाइऑक्साइड अवशोषित करता है और हर वर्ष 700 किलोग्राम ऑक्सीजन उत्सर्जित करता है। गरमियों में वृक्षों के नीचे का तापमान सामान्य से 4 डिगरी सेंटीग्रेड कम रहता है। इस तरह वृक्ष जीवनदायक भी हैं और अनेकों प्रेरणाओं के स्रोत भी। हमें इनका संरक्षण करना चाहिए। ❑

बात उन दिनों की है, जब शिवाजी मुगलों के विरुद्ध छापामार युद्ध लड़ रहे थे। एक दिन वे छिपते-छिपाते एक वनवासी बुढ़िया की झोंपड़ी पर पहुँचे और उससे भोजन की प्रार्थना की। बुढ़िया ने प्रेमपूर्वक खिचड़ी बनाकर उन्हें परोस दी। शिवाजी को भूख बहुत जोरों से लगी थी, इसलिए जल्दी से खाने की आतुरता में उन्होंने खिचड़ी के बीच में हाथ डाल दिया और अपनी उँगलियाँ जला बैठे। बूढ़ी महिला ने यह दृश्य देखा तो उन्हें टोकते हुए बोली—''तू दिखने में लगता शिवाजी जैसा है और काम भी उसी की तरह मूर्खता के करता है।'' यह सुनकर शिवाजी स्तब्ध रह गए।

उन्होंने बूढ़ी महिला से पूछा—''मैंने हाथ जलाए तो मुझे मूर्ख कहना समझ में आया, पर शिवाजी ने क्या मूर्खता की?'' वह वृद्ध महिला बोली—''तूने किनारे की ठंढी खिचड़ी खाने की जगह बीच में हाथ डाला और जला बैठा। यही मूर्खता शिवाजी की भी है। वह मुगल साम्राज्य के दूर बसे छोटे किलों को आसानी से जीतने की जगह बड़े किलों पर हाथ डालता है और मात खा बैठता है।'' बात पते की थी। शिवाजी को अपनी रणनीतिक भूल का भान हुआ। बूढ़ी महिला को धन्यवाद देते हुए वे वहाँ से निकले और अपनी सामरिक नीति दोबारा से तैयार की। छोटे लक्ष्यों को निर्धारित कर उन पर विजय प्राप्त की और अंततः बड़ा मोर्चा जीतने में सफल रहे। यही नीति जीवन-संग्राम में भी साथ देती है और जो छोटे पर वास्तविक लक्ष्यों को लक्ष्य बनाकर चलते हैं, वे उन्हें जीतते हुए अंततः जीवन में बड़े उद्देश्यों को पूर्ण करने में सफल रहते हैं।

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

भूत-प्रेतों की दुनिया

भूत-प्रेतों के किस्से, कहानियाँ हमें अक्सर सुनने व पढ़ने को मिलते हैं। शास्त्र-पुराणों के अनुसार चौरासी लाख योनियों में भूत-प्रेतों की योनियाँ भी शामिल हैं। कहते हैं कि अकाल मृत्यु होने या किसी घटना, दुर्घटना से मृत्यु होने पर व्यक्ति की आत्मा भूत-प्रेतों की योनियों में भटकती फिरती है और तब तक भटकती फिरती है, जब तक उसका पुनर्जन्म नहीं हो जाता या उसे सद्‌गति, मुक्ति प्राप्त नहीं हो जाती।

जीवन भर कुकर्म, हत्या, लूट, बेईमानी आदि बुरे कर्मों में लिप्त रहने वाले लोग भी मृत्यु के पश्चात भूत-प्रेत आदि योनियों को ही प्राप्त होते हैं। कर्मफल सिद्धांत के अनुसार भूत-प्रेत की योनियों में रहकर जीव अपने जीवन में किए गए बुरे कर्मों की सजा ही भुगत रहा होता है, जिसमें उसे घोर अतृप्ति, भूख, प्यास, दु:ख आदि का सामना करना पड़ता है।

हाँ! कभी-कभी शुभ कर्मों में लिप्त रहने वाले लोग जब अकालमृत्यु के कारण भूत-प्रेतों की योनियाँ प्राप्त करते हैं तो वे अपने पूर्वजन्म की सत्प्रवृत्ति के अनुसार भूत-प्रेत की योनि में रहते हुए भी स्वभावत: ही किसी की सहायता भी किया करते हैं और उन्हें शीघ्र ही प्रेतयोनि से मुक्ति भी मिल जाती है। अपने जीवनकाल में जीव का अच्छा या बुरा जैसा स्वभाव होता है, वह उसके प्रेत-योनि में रहते हुए भी कायम रहता है। इसी कारण कोई भूत-प्रेत किसी की हानि-ही-हानि करता है तो कोई किसी की मदद भी करता है।

भूत-प्रेतों से संबंधित एक ऐसी ही रोचक कथा है। रामदीन नाम का एक व्यक्ति एक टोकरी में मूँगफली, मिठाई आदि लेकर अपने गाँव से तीन किलोमीटर दूर स्थित दूसरे गाँवों में जाकर बेचा करता था। वह सुबह 10 बजे निकलता और शाम के 7-8 बजे तक घर वापस आ पाता था। मार्ग में पैदल जाते हुए उसे एक नदी पार करनी पड़ती थी और उस नदी के बाद एक बहुत बड़े-बगीचे से होकर वह दूसरे गाँवों में पहुँचकर अपना सामान बेचा करता था। रामदीन अक्सर उसी बगीचे में कुछ देर विश्राम किया करता था।

एक दिन आदतन रामदीन उसी बगीचे में आराम करने को ठहर गया। उस बगीचे में आम, पीपल, बरगद आदि के हजारों वृक्ष थे। आज वह उन्हीं वृक्षों के बीच लेटकर आराम करने लगा। फिर देखते-ही-देखते उसे गहरी नींद आ गई। वह बगीचा इतना बड़ा और घना था कि लोग उसमें दिन में जाने में भी घबराते थे, पर रामदीन के लिए तो यह रोज का काम था।

उसने सुन रखा था कि इस बगीचे में भूत-प्रेत रहते हैं, फिर भी वह हमेशा निडर और निर्भय रहता था; क्योंकि उसने सुन रखा था कि जो गायत्री मंत्र का जाप करता है, हनुमान चालीसा का पाठ करता है, उसे भूत-प्रेत परेशान नहीं करते। फिर वह तो नित्य गायत्री मंत्र का जाप और हनुमान चालीसा का पाठ करके ही अपने घर से निकलता था। उसके घर के पास ही एक हनुमान जी का मंदिर था वहाँ अक्सर हनुमान चालीसा, सुंदरकांड आदि का पाठ हुआ करता, जिसमें वह शामिल हुआ करता था।

हनुमान चालीसा उसे कंठस्थ था और उसने गायत्री मंत्र का जाप करना मंदिर के पुजारी जी से

सीख रखा था। अस्तु जिस दिन उसे घर पर चालीसा पाठ एवं गायत्री मंत्र का जाप करने का मौका नहीं मिलता, उस दिन वह राह चलते हुए ही कंठस्थ हनुमान चालीसा का पाठ करता जाता था और इसमें उसे आनंद की प्राप्ति होती थी। उधर जब रामदीन की नींद खुली तो रात्रि के आठ बज चुके थे। पूनम की रात होने के कारण उस घने बगीचे में भी आज अँधेरे की जगह उजाला व्याप्त था।

रात्रि हो जाने के कारण वह घबराकर वहाँ से सिर पर टोकरी रखकर भागने की तैयारी कर रहा था कि तभी उसने देखा कि उस शांत बगीचे में जोरदार चहलकदमी शुरू हो गई। उसने देखा कि सूक्ष्म शरीरधारी, वायु शरीर में कई मानव-आकृतियों की छाया उभर आईं और उनमें आपस में संघर्ष छिड़ गया।

पहले तो वे अदृश्य थे, पर अब वे एक-एक कर दृश्य होते जा रहे थे। उन आकृतियों में कई भूतनी थीं तो कई भूत थे। किसी के दो सिर थे तो किसी के एक भी नहीं। किसी की दो आँखें थीं, किसी की एक तो किसी की एक भी नहीं। किसी के एक पैर था तो किसी के दो।

ऐसा लग रहा था कि भूतों में कोई दबंग भूत अन्य भूतों की पिटाई कर रहा हो। यह देखकर रामदीन के शरीर में कँपकँपी-सी उठ रही थी और उसके सारे रोंगटे मानो खड़े हो चुके थे। वह पसीने से पूरा नहा गया और किसी अनिष्ट की आशंका से काँप गया।

वह टोकरी उठाकर भागना चाहता था, पर वह टोकरी उठा नहीं पा रहा था। तब मन-ही-मन उसने गायत्री मंत्र का पाठ प्रारंभ किया। तभी वहाँ हो रहा कोलाहल शांत हो गया और उसने देखा कि एक विशालकाय वायु शरीरधारी मानवीय आकृति सामने के पीपल के वृक्ष से उतरकर उसकी ओर बढ़ी चली आ रही है। उसने डरते हुए भी गायत्री मंत्र का पाठ करना जारी रखा।

उसने सोचा कि अब यहाँ से भागने से कोई फायदा नहीं, जो होगा सो देखा जाएगा और फिर गायत्री मंत्र की शक्ति और हनुमान जी की कृपा भी तो मेरे साथ है, फिर भूत-प्रेत हमारा क्या कर पाएगा। तभी उसने देखा कि वह आकृति उसके पास पहुँच गई।

रामदीन ने स्वयं को सँभालते हुए कहा—"तुम कौन हो और क्या चाहते हो? मुझे क्यों परेशान कर रहे हो? तुम जान लो, तुम जो भी हो मैं डरने वाला नहीं; क्योंकि गायत्री माँ की शक्ति, उनकी कृपा मेरे पास है। तब उस भूत ने कहा कि तुम डरो मत। मैं तुम्हें डराने भी नहीं आया हूँ। तुम पहले व्यक्ति हो जो इस बगीचे में, वह भी रात्रि में मेरे सामने इतने निडर होकर बैठे हो, निश्चित ही तुम्हारे साथ किसी दैवी शक्ति का साथ है, वरना तुम मेरा सामना नहीं कर सकते थे। मैंने यहाँ कई लोगों को जान गँवाते देखा है, पर तुम कुछ अलग हो।

फिर वह भूत बोला—"मैं इस बगीचे का राजा हूँ। मेरे रहते तुम्हें डरने की आवश्यकता नहीं। इस बगीचे में और भी कई भूत हैं, जो हमेशा दूसरों को हानि पहुँचाने की फिराक में रहते हैं। जब तुम यहाँ सो रहे थे, तब उनमें से कई तुम्हें हानि पहुँचाना चाहते थे, पर मैंने उन सबकी पिटाई करके अभी-अभी उन्हें शांत किया है। अभी थोड़ी देर पूर्व तक जो तुम कोलाहल सुन रहे थे, वह उन्हीं दुष्ट भूतों का था, जो पहले आपस में एक बड़े पीपल वृक्ष पर रहने को लेकर लड़ रहे थे और फिर तुम्हें देखकर तुम्हारी ओर भागे आ रहे थे, पर मैंने उन सबको तुम्हारे पास आने से पहले ही शांत कर दिया है।"

तब रामदीन ने कहा—"वास्तव में आप भूत होते हुए भी बड़े सज्जन जान पड़ते हैं। कहिए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।" तब उस भूत ने कहा—"पहले तो तुम्हारी टोकरी में जो मिठाई रखी है, वह मुझे खिलाओ।" रामदीन ने अपने हाथों से भूत को दो-तीन लड्डू दिए।

भूत उन्हें खाकर बहुत प्रसन्न हुआ। फिर रामदीन ने अपनी पूरी टोकरी ही उस भूत के हवाले कर दी। पूरी टोकरी खाली करते हुए भूत ने कहा—''बहुत अच्छी मिठाइयाँ हैं। आज मेरा मन तृप्त हुआ।'' अब रामदीन का डर कम होने लगा था।

उसने साहस करके पूछा—''तुम यहाँ कब से रह रहे हो।'' इस पर भूत ने कहा—''कभी मैं पास के गाँव माधोपुर में ही अपने माता-पिता के साथ रहता था। मैं बहुत गरीब था। रोजी-रोटी के लिए मेरे पास पैसे नहीं थे, इसलिए मैं अपने घर के पास के पाँच पीपल के वृक्षों की कटाई कर, उन्हें बेचकर, उनसे प्राप्त पैसे से अपने घर का गुजारा चलाने लगा, पर उसके बाद मुश्किल से दो महीने के अंदर ही मेरी पत्नी व बच्चे की अकस्मात् मृत्यु हो गई। मैं उस सदमे को नहीं झेल सका और मैंने आत्महत्या कर ली।

''मृत्यु के बाद से ही मैं भूत की योनि में इसी बगीचे में इसी पीपल के वृक्ष पर रह रहा हूँ, पर आज तुम्हारे जैसे भगवद्भक्त को देखकर मुझे बड़ी तसल्ली और संतोष हो रहा है। तुम्हें देखकर मुझे लगता है कि तुम मुझे प्रेतयोनि से मुक्त होने में मदद कर सकते हो।'' ''पर मैं क्या कर सकता हूँ?''—रामदीन ने पूछा।

भूत बोला—''तुम अपने गाँव के मंदिर के पुजारी से मिलकर मेरी मुक्ति के संकल्प के साथ गायत्री अनुष्ठान और यज्ञ करा सकते हो। तुम मेरे गाँव माधोपुर जाकर पाँच पौधों का रोपण करवा सकते हो। मुझे आशा है कि ऐसा करने से मेरी मुक्ति अवश्य ही हो जाएगी।''

रामदीन बोला—''मैं स्वयं को बड़ा सौभाग्यशाली समझूँगा, यदि वास्तव में मैं तुम्हारे लिए यह कर पाया। मैं कल ही अपने गाँव में पुजारी जी से मिलकर तुम्हारे लिए यह सब कराऊँगा। तुम मुझ पर भरोसा रखो।''

वह भूत बोला—''मुझे तुम पर पूरा भरोसा है, पर मैं उस कार्य के बदले तुम्हें पहले ही कुछ देना चाहता हूँ।'' ''तुम मुझे भला क्या दे सकते हो?''—रामदीन ने कहा। तब उस प्रेत ने उसे कहा—''तुम मेरे पीछे-पीछे आओ।''

अब तो रामदीन पूरी तरह निडर होकर उसके पीछे-पीछे चल दिया। वह भूत उस बगीचे के उत्तरी छोर पर पहुँचा। वहाँ एक जगह एक छोटा-सा टीला था और वहीं पास में मूँज और एक नीम का पेड़ था। उस नीम के थोड़ा आगे एक छोटा-सा पलास का पेड़ था।

वहाँ पहुँचकर वह आगे बढ़ा और उसने विकराल रूप धारण कर लिया और स्वयं पलास के पेड़ के नीचे खोदने लगा। अचानक रामदीन ने उस गड्ढे में एक घड़ा देखा। भूत ने उसे वह घड़ा खोलने को कहा। रामदीन ने जैसे ही घड़े के ढक्कन को उठाया उसकी आँखें खुली-की-खुली रह गईं, क्योंकि उसमें पुराने सोने-चाँदी के सिक्के भरे हुए थे। उन्हें पाकर रामदीन बहुत प्रसन्न हुआ। वह भूत को आश्वस्त करते हुए वहाँ से निकला। वह रात्रि के लगभग 10 बजे घर पहुँचा।

अगले ही दिन उसने घड़े के कुछ सिक्कों को बेचकर गाँव में पुजारी जी के नेतृत्व में गायत्री यज्ञ संपन्न कराया। उसने पुजारी जी को प्रेत के विषय में सारी बातें बताईं और पुजारी जी ने तदनुरूप उस प्रेत की मुक्ति के संकल्प के साथ सुंदरकांड का पाठ व गायत्री यज्ञ विधिवत् संपन्न कराए। रामदीन ने उन पुजारी जी को भी ढेर-सारा धन दक्षिणास्वरूप प्रदान किया। साथ ही उसने माधोपुर गाँव जाकर कई पौधे भी लगवाए।

कहते हैं कि उसके बाद उस प्रेत ने रामदीन के स्वप्न में आकर स्वयं के मुक्त होने की बातें बताईं। रामदीन भी अब खुशहाल जीवन जीने लगा। सचमुच भूत-प्रेतों की दुनिया भी कितनी विचित्र है, कितनी रोचक और रहस्यमय है। ❑

युगगीता- 274

शरीर संबंधी तप का वर्णन

(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की तेरहवीं किस्त)

[इससे पूर्व की किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के ग्यारहवें, बारहवें एवं तेरहवें श्लोकों पर चर्चा की गई थी। इन श्लोकों में श्रीभगवान, कहते हैं कि यज्ञ करना ही मनुष्य होने के नाते हमारा कर्त्तव्य है—इस तरह मन को संतुष्ट करके फल की कामना से रहित होकर शास्त्रविहित यज्ञ जब किया गया है, तब वह यज्ञ सात्त्विक होता है। परंतु हे अर्जुन! फल की कामना को मन में लेकर दंभ की पूर्ति के लिए जो यज्ञ किया जाता है, वह यज्ञ राजसिक होता है एवं शास्त्रविहीन, अन्न-दान से रहित, बिना मंत्रों के, बिना दक्षिणा के और बिना श्रद्धा के किए जाने वाले यज्ञ को तामसिक यज्ञ कहते हैं। यहाँ भगवान कृष्ण इस आशय के साथ इन बातों को कहते हैं कि यदि यज्ञ में प्रतिभाग करने वाले, यज्ञ करने की प्रक्रिया, प्रणाली इत्यादि सात्त्विक होंगे तो वह यज्ञ सात्त्विक हो जाएगा, राजसिक होंगे तो वह राजसिक हो जाएगा और यदि ये सब तामसिक होंगे तो वह यज्ञ तामसिक हो जाएगा।

भगवान श्रीकृष्ण के यहाँ इन बातों को कहने का तात्पर्य यह है कि सात्त्विक प्रवृत्ति वाला मनुष्य एकनिष्ठ होता है, वह समझता है कि यदि मुझे यज्ञ करना है तो इसका आधार कामनाएँ नहीं हो सकतीं। वह मनुष्य होने के नाते यज्ञ को कर्त्तव्यपालन के भाव से करता है और ऐसा सोचता है कि कर्त्तव्यपालन के अतिरिक्त भला और किसी भाव की मुझे आवश्यकता ही क्यों पड़ेगी। इसी एक भाव से सात्त्विक प्रवृत्ति वाले मनुष्य का मन समाधान को प्राप्त कर जाता है। इसी क्रम में वे आगे कहते हैं कि फल की कामना को लेकर किया जाने वाला यज्ञ या फिर दिखावटीपन अथवा दंभ प्रदर्शन के लिए किया जाने वाला यज्ञ राजसिक प्रवृत्ति का होता है। पौराणिक आख्यानों में वर्णित दक्ष प्रजापति का यज्ञ एक ऐसा ही यज्ञ था। ऐसा ही शास्त्रविहीन, श्रद्धाविहीन यज्ञ तामसिक यज्ञ बन जाता है। यहाँ भगवान द्वारा ये वर्णन करने के पीछे का कारण यह है कि हम यह सत्य समझ सकें कि कोई कर्म अपने स्तर पर न सतोगुणी है, न रजोगुणी है और न तमोगुणी है, वरन उसको करने में जैसी भावना का प्रयोग किया जाता है—वह यह निर्धारित करती है कि वह कर्म किस श्रेणी का है।]

इसके उपरांत श्रीभगवान कहते हैं कि—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते *॥14॥*

शब्दविग्रह—देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम्, शौचम्, आर्जवम्, ब्रह्मचर्यम्, अहिंसा, च, शारीरम्, तपः, उच्यते॥

शब्दार्थ—देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनों का पूजन (**देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम्**), पवित्रता (**शौचम्**), सरलता (**आर्जवम्**), ब्रह्मचर्य (**ब्रह्मचर्यम्**), और (**च**), अहिंसा (यह) (**अहिंसा**), शरीर संबंधी (**शारीरम्**), तप (**तपः**), कहा जाता है। (**उच्यते**)।

अर्थात देवता, विप्र, गुरुजन और जीवनमुक्त महापुरुष का भली भाँति पूजन करना, शुद्धि रखना, सरलता, ब्रह्मचर्य का पालन करना और हिंसा न करना—यह शरीर संबंधी या शारीरिक तप कहा जाता है। यहाँ पर ध्यान देने योग्य तथ्य है कि शारीरिक तप का मूल आधार त्याग रखने से है, यथा भली भाँति पूजन करने के लिए अहंकार का त्याग अनिवार्य है, शुद्धि रखने में आलस्य-प्रमाद को त्यागना जरूरी हो जाता है तथा सरलता अपनाने के लिए कुटिलता को त्यागना जरूरी है।

ब्रह्मचर्य भी आसक्ति एवं विषय-भोगों के प्रति रुचि को त्यागने से सधता है तो वहीं अहिंसा का पालन तभी संभव है, जब व्यक्ति मात्र अपने हितों को पूरा करने के दुर्भाव को त्याग दे। इन सभी गुणों को मिलाकर श्रीभगवान शारीरिक तप या शरीर संबंधी तप में गिनते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण यहाँ कहते हैं कि शरीर संबंधी तप में किन गुणों को गिनना चाहिए। इससे पूर्व के श्लोकों में उन्होंने सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक यज्ञों की, आहार-वृत्ति की विवेचना की थी, अब वे शारीरिक, वाचिक एवं मानसिक तपों का वर्णन चौदहवें, पंद्रहवें एवं सोलहवें श्लोकों में करेंगे, ताकि उनको आधार बनाकर सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक भेदों को बताया जा सके।

वे कहते हैं कि देवगण, जिनमें पाँच ईश्वर कोटि देवशक्तियाँ—भगवान विष्णु, शिव, गणेश, शक्ति और सूर्य सम्मिलित हैं, तैंतीस कोटि शास्त्रविहित देवता सम्मिलित हैं, उनका निष्काम भाव से पूजन शरीर संबंधी तपों में पहला तप है।

परमपूज्य गुरुदेव ने देवता शब्द की व्याख्या देने वाले के भाव से करते हुए कहा है कि जिसके पास देने का अधिकार होने के साथ देने का भाव भी हो, वो देवता बन जाता है। इस संदर्भ में संत तुकाराम की प्रसिद्ध कथा आती है कि एक बार भगवान शिव एवं भगवान विष्णु उनकी परीक्षा लेने के लिए पहुँचे। भगवान विष्णु ने तुकाराम का द्वार खटखटाया और अपनी लीला से बाहर तूफान लाते हुए, स्वयं साधु रूप धरा। तुकाराम के द्वार खोलने पर उन्होंने पूछा—"बाहर बरसात हो रही है, क्या अंदर आ जाएँ।"

संत तुकाराम की झोंपड़ी छोटी थी तो वे बोले—"हमारा घर छोटा-सा है। इसमें एक व्यक्ति के लेटने लायक और दो के बैठने लायक स्थान है। यदि आपको घुटने मोड़कर बैठने में तकलीफ न हो तो अंदर आ जाइए।" भगवान विष्णु अंदर आकर घुटने मोड़कर बैठ गए। कुछ समय बाद भगवान शिव ने द्वार खटखटाया और अंदर आने का निवेदन किया। उत्तर में तुकाराम बोले—"हमारा घर छोटा-सा है। इसमें एक व्यक्ति के लेटने की, दो के बैठने की, तीन के खड़े होने की जगह है। आप लोगों को दिक्कत न हो तो अंदर आ जाएँ, सब मिलकर खड़े होकर रात गुजार लेंगे।" ऐसा ही हुआ।

सुबह दोनों भगवानों ने अपना असली रूप दिखाया और तुकाराम से बोले—"तुकाराम! तुम परीक्षा में सफल हुए। तुम देवता हो।" संत तुकाराम बोले—"भगवन्! मैं कैसा देवता हूँ? मेरी तो झोंपड़ी भी छोटी है।" भगवान बोले—"झोंपड़ी भले से तुम्हारी छोटी है, हृदय तुम्हारा बड़ा है। जिसका

हृदय विशाल है, वो देवशक्तियों में गणना करने योग्य है। भगवान कहते हैं कि ऐसी देवशक्तियों का पूजन शारीरिक तपों में प्रथम है।''

साथ ही वे द्विजों को भी इसमें गिनते हैं। द्विज का अर्थ है—संस्कारयुक्त। शास्त्र कहते हैं—**जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।** अर्थात जन्म से सभी एक ही जाति के हैं, हमारे कर्म-संस्कार हमें द्विज या श्रेष्ठ बनाते हैं। साथ ही प्रज्ञा को प्राप्त कर चुके, जीवन्मुक्त, तत्त्वज्ञानी महापुरुषों को हम प्राज्ञ की श्रेणी में गिनते हैं। श्रीभगवान इन सभी के यथायोग्य पूजन, स्मरण, अर्चन इत्यादि करने को शारीरिक तपों की श्रेणी में पहले गुण के अनिवार्य अनुबंध के रूप में लेते हैं और अर्जुन को इनका पालन करने को कहते हैं।

इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण शुचिता को अपनाने को कहते हैं। पतंजलि ने शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान को योगांगों के अंतर्गत नियम में सम्मिलित किया है। योगसूत्र में वे कहते हैं कि—**शौचसंतोषतपः-स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥2/32॥** उस शौच को और परिभाषित करते हुए वे कहते हैं कि शौच का तात्पर्य पवित्रता के भाव से है—**शुचेः पवित्रतायाः भावः।**

उस शुचिता को भी वे दो प्रकारों का बताते हैं। पहला तो बाह्य शौचम्—बाहरी सफाई, जिसमें नहाना-धोना, खाने-पीने की पवित्रता रखना इत्यादि सम्मिलित है तो दूसरी आंतरिक है, जिसे पतंजलि कहते हैं—**चित्तमलानाम् आक्षालनम्।** अर्थात चित्त के दोषों का धुलना या चित्तशुद्धि करना। इस सम्मिलित स्वरूप को शारीरिक तप का अंग मानना चाहिए।

इसके बाद श्रीभगवान आर्जव अर्थात सरलता को, निरहंकारिता को भी शरीर संबंधी तप में गिनते हुए ब्रह्मचर्य के पालन को भी शारीरिक तप में गिनते हैं। इसके बाद वे अहिंसा को भी इसमें सम्मिलित करते हुए इन सबको शरीर संबंधी तप में गिनते हैं तथा कहते हैं कि **शारीरं तप उच्यते**—ये सब शारीरिक तप हैं। इस श्लोक में उन्हीं गुणों की गणना की गई है। (क्रमशः)

आनंद ने बुद्ध से प्रश्न किया—''भगवन्! आप विश्व भर में धर्म के प्रचार के लिए भिक्षुओं को भेज रहे हैं, पर इनके पास कोई धन नहीं है तो ये मार्ग-व्यय को कैसे पूर्ण कर पाएँगे?'' बुद्ध बोले— ''आनंद! यह तुमने कैसे सोचा कि इनके पास कुछ नहीं है। इनके पास संयमित जीवन की संपदा है। संयम और संघर्ष एकदूसरे के पर्यायवाची हैं। जो संघर्ष कर सकता है, वह अपने पुरुषार्थ से जनसहयोग स्वतः प्राप्त कर लेता है। वस्तुतः संपदा तो आंतरिक ही होती है, बाह्य जीवन में तो केवल उसके परिणाम दिखाई पड़ते हैं।'' इस चिंतन के साथ भगवान बुद्ध के भेजे गए विश्वदूतों ने अपने जीवन जीने के माध्यम से ही उनके सिद्धातों का प्रचार-प्रसार संपूर्ण विश्व में कर दिया।

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

जनपरिष्कार हेतु विचार-क्रांति की आवश्यकता

मानवीय सत्ता ईश्वर की अनुपम कलाकृति है, उसे स्रष्टा ने उन विशेषताओं से संपन्न कर भेजा है कि वह अपनी वरिष्ठता एवं विशिष्टता के आधार पर इस विश्व-उद्यान को सुरभित, समुन्नत बनाए रखे। औसत नागरिक स्तर की सादगी भरा निर्वाह करे, उत्कृष्ट चिंतन और आदर्श चरित्र की गौरव-गरिमा बनाए रखे, पवित्रता-प्रखरता पर आधारित अनुकरणीय योजनाएँ बनाकर चले, तो उसको अपनाने वाले भी निरंतर आगे बढ़ते जाएँ, ऊँचे उठते जाएँ।

यही है मानव जीवन की नीति-मर्यादा एवं कर्त्तव्य धर्म का सार-संक्षेप, जो स्रष्टा की इस मानवरूपी सर्वोत्कृष्ट कलाकृति से अपेक्षित है, लेकिन चारों ओर व्यापक स्तर पर इस आदर्शवादी निर्धारण को तोड़ते देखा जा सकता है, लोभ, मोह और अहंकार के लिए ही मरते-खपते देखा जा सकता है, जिसके चलते वासना-तृष्णा-अहंता के अतिरिक्त कुछ नहीं सूझता।

संकीर्ण स्वार्थपरता में जीवन का आदि-अंत दिखता है, जिसमें परोपकार के लिए सोचने की फुरसत ही नहीं मिलती, लोक-मंगल के कार्यों के प्रति मन में उत्साह-उमंग ही नहीं उठती। इससे भी आगे परंपरा के नाम पर जीवन के हर क्षेत्र में ऐसे खोटे चलन चल रहे हैं, जो किसी भी प्रकार से मानवीय गरिमा पर खरे नहीं उतरते और न ही सामाजिक उत्कर्ष की कसौटी पर अपना औचित्य सिद्ध कर पाते हैं।

सार रूप में बौद्धिक, नैतिक और सामाजिक क्षेत्र में घुसी हुई भ्रांतियाँ चित्र-विचित्र प्रथा-परंपरा बनकर प्रचलन में इस कदर गुँथ गई हैं कि उनकी अनुपयुक्तता के बारे में संदेह करने तक की आवश्यकता नहीं समझी जाती। बौद्धिक क्षेत्र में अंधविश्वास ने कितने घोंसले बना रखे हैं और वे कितनी निश्िंचततापूर्वक चल रहे हैं।

आहार को ही लें। तला-भुना, मिर्च-मसाले युक्त, स्वादिष्ट समझा जाने वाला हानिकारक भोजन बड़ी शान व चाव से परोसा जाता है, इससे भी दो कदम आगे तंबाकू, गुटखा, शराब जैसे नशीले पदार्थों, अभक्ष्य मांसाहार को जैसे सार्वजनिक स्वीकृति मिली हुई है, पार्टियों व विवाह उत्सव में इनका खुलेआम चलन देखकर आश्चर्य होता है।

खारा नमक, सोडियम क्लोराइड एक प्रकार का विष है। इसी तरह शीरा निचोड़ने के बाद चीनी भी मीठा जहर ही सिद्ध होता है, लेकिन लोकचलन व स्वाद के चलते इनके बिना भोजन अधूरा ही माना जाता है।

यदि आहार के क्षेत्र में विचार-क्रांति का समावेश हो सके तो स्वास्थ्य के संबंध में एक बड़ा सकारात्मक परिवर्तन प्रत्यक्ष हो सकता है। आधे से अधिक दुर्बलता और रुग्णता से छुटकारा अनायास ही मिल सकता है।

सात्त्विक, पौष्टिक एवं यथासंभव प्राकृतिक आहार की व्यवस्था हो सके व उचित समय पर शयन-जागरण, श्रमशील जीवन, धूप-हवा के संपर्क में रहने, संयमित जीवन से जुड़े छोटे-मोटे निर्देशों का पालन होता रहे तो मनुष्य अन्य प्राणियों की भाँति नीरोग एवं दीर्घजीवी रह सकता है।

यदि आहार-विहार से जुड़े प्रचलित प्रवाह को उलटा जा सके तो अनावश्यक शारीरिक पीड़ा, अस्पतालों में धन गँवाने, अशक्त-रुग्ण जीवन तथा

असमय मृत्यु जैसे अगणित संकटों से सहज छुटकारा मिल सकता है।

इसी तरह मानसिक विक्षोभों में अधिकांश स्वयं के ही नकारात्मक चिंतन के परिणाम रहते हैं। जो उपलब्ध है, उसी में संतोष-आनंद लेने की अपेक्षा, जो नहीं है उसके लिए हैरान-परेशान रहना, दूसरों से तुलना कर दरिद्र अनुभव करना, यह सोच की ही दरिद्रता है। चारों ओर जो उत्साहवर्द्धक है, उसी पर ध्यान क्यों न केंद्रित किया जाए।

मनोकामनाओं के पर्वत सर पर लादने के बजाय जो उपलब्ध है, उसमें संतोष की आदत क्यों न डाली जाए। हार-जीत की परवाह किए बिना, खिलाड़ी भाव से प्रसन्नतापूर्वक जीवन के खेल का आनंद क्यों न लिया जाए। हर कोई हमारी मरजी से ही चले, उसका आग्रह क्यों ?

ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिन पर ठंढे मन से विचार कर, चिंतन के अभ्यस्त ढर्रे को विवेकयुक्त परिवर्तन कर, तनाव, चिंता, आशंका, आवेग जैसे कितने ही मनोविकारों की निरंतर झुलस से छुटकारा पाया जा सकता है।

परिवार को एक उद्यान मान, इसे गृहस्थ तपोवन का रूप मानते हुए, इसे सबके उत्कर्ष की प्रयोगशाला बनाया जा सकता है। पत्नी को मित्र-साथी मानते हुए, यौनाचार की अति से दूर रहकर, संस्कारवान संतान की नींव रखी जा सकती है। लड़की-लड़के के भेदभाव करने की कुटिलता से बचा जाए, हर सदस्य के प्रति एक आँख प्यार की और दूसरी सुधार की रखी जाए, तो सभी के संतुलित विकास का मार्ग प्रशस्त होता रहेगा। उत्तराधिकार में जोड़ी संपत्ति सौंपने के बजाय उन्हें स्वावलंबी बनाया जाए, संस्कारवान बनाया जाए, तो परिवार की गौरव-गरिमा अक्षुण्ण रहेगी अन्यथा मुफ्त की कमाई के दुरुपयोग के साथ तमाम तरह के कुटेव परिवार में पनपते देखे जाते हैं, जिसमें पीढ़ियाँ बरबाद होती देखी जाती हैं।

अर्थव्यवस्था का जीवन तंत्र पर भारी प्रभाव पड़ता है। आज हर धनी-निर्धन की आर्थिक आवश्यकताएँ बढ़ी-चढ़ी हैं और आर्थिक तंगी की शिकायत होती रहती है। यहाँ जानने योग्य है कि संचय और अपव्यय के लिए तो कुवेर का खजाना भी कम पड़ता है। आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के नाम पर अनीति उपार्जन, ऋण, रिश्वत, बेईमानी, भ्रष्टाचार, अपराध का दौर चलता रहता है। लोभ-लिप्सा को न पटने वाली खाई और न बुझने वाली आग कहा गया है।

ऐसी दशा में अर्थ-संतुलन बैठाने के लिए दृष्टिकोण-परिवर्तन का नया आधार अपनाना होगा। औसत देशवासियों के स्तर का निर्वाह, तेते पाँव पसारिए, जेती लांबी सौर, सादा जीवन-उच्च विचार, विलास और अपव्यय में कटौती जैसे दूरदर्शितापूर्ण सिद्धांत अपना लेने पर ये समस्याएँ सहज रूप में हल हो जाती हैं।

इसके साथ श्रम की प्रतिष्ठा, श्रमनिष्ठ जीवन, ईमानदारी की नीति को अपनाया जाए तो अर्थ-संकट शायद ही किसी को सताए अन्यथा अपव्ययी, दुर्व्यसनी और सामाजिक कुरीतियों से ग्रसित लोगों को इसकी आग में निरंतर झुलसना पड़ेगा।

पढ़े-लिखे लोगों में आरामतलबी देखने लायक रहती है। हर कोई ठाठ-बाट की नौकरी चाहता है, लेकिन इसमें मेहनत से जी चुराता है। सर्वविदित है कि शिक्षितों के अनुपात में नौकरियों के पद सीमित ही होते हैं। 5-10 प्रतिशत को ही नौकरी मिल पाती है, अतः शेष को अन्य आधार अपनाकर अपने पैरों पर खड़ा होना होगा। उन्हें स्वावलंबन के उपायों की खोज करनी होगी।

इस संदर्भ में कौशल आधारित पेशों से लेकर कुटीर उद्योगों को अपनाया जा सकता है। हर क्षेत्र एवं वहाँ के विशिष्ट उत्पादों तथा प्राकृतिक संसाधनों के आधार पर इस दिशा में कार्य किया जा सकता है।

शिक्षा तंत्र का भी दायित्व बनता है कि जीपनोपयोगी सामान्य ज्ञान के साथ आजीविका उपार्जन के उपायों को भी सिखाया जाए। इस पृष्ठभूमि में पढ़ने-पढ़ाने के पूरे तंत्र को नए सिरे से निर्धारित करने की आवश्यकता है।

व्यक्तिगत जीवन से संबंधित समस्याओं का गहनतम स्तर पर जड़-मूल उपचार धर्म-अध्यात्म एवं दर्शन आदि के क्षेत्र में उपलब्ध होता है। इन क्षेत्रों में व्याप्त मान्यताओं को कसौटी पर कसा जाना चाहिए कि वे मनुष्य को अधिक सुसंस्कृत, अधिक पराक्रमी, अधिक उदार-समाजनिष्ठ बना रही हैं या उसको इनके विपरीत दिशा में धकेल रही हैं।

विभिन्न धर्म-संप्रदायों के अंतर्गत मान्यताओं और परंपराओं का ऐसा उलझा हुआ जाल-जंजाल है कि एक को सच ठहराते ही शेष सभी को झूठ ठहराना पड़ता है। जबकि आवश्यकता एकात्मता की ओर ले जाने वाले नैतिक सूत्रों एवं जीवन दर्शन की है, जो एकदूसरे से तालमेल बिठा सकें। जो मनुष्यमात्र के जीवन संबंधी प्रश्नों के सार्थक उत्तर देकर, उसे बेहतर मानव बनने में सहायता कर सकें।

उपयुक्त मूल्य चुकाए बिना ही देवता की मनुहार-गुहार के हास्यास्पद प्रयास व्यापक स्तर पर देखने को मिलते हैं, जहाँ मनोकामना पूर्ण करने के लिए चित्र-विचित्र उपायों को करते देखा जा सकता है। जिसमें शराब चढ़ाने से लेकर निरीह पशुओं की बलि तक शामिल है। ऐसे में धर्म-अध्यात्म का वह कलेवर पीछे छूट जाता है, जो मानव को अधिक श्रेष्ठ, गुणवान एवं संवेदनशील इनसान बनाने के लिए गढ़ा गया था।

धर्म-अध्यात्म क्षेत्र में घुसी ऐसी मूढ़ मान्यताओं, कुरीतियों के परिमार्जन की आवश्यकता है। विवेक पर आधारित, व्यक्ति के परिष्कार, आत्मकल्याण और समाज के उत्कर्ष को साधने वाले युग दर्शन को खड़ा करने की आवश्यकता है। बौद्धिक क्रांति के सहारे इस प्रयोजन को पूरा किया जा सकता है।

इसी आधार पर सामाजिक क्रांति को लाना है, जो ऐसे प्रचलनों को निरस्त कर सके, जो विषमता, विघटन, अन्याय और अनौचित्य के पोषक हों। पारस्परिक स्नेह-सौमनस्य, सहयोग का विस्तार करने वाले वसुधैव कुटुंबकम् के, आत्मवत् सर्वभूतेषु के दृष्टिपोषक प्रथा-प्रचलनों को ही मान्यता मिले और शेष को औचित्य की कसौटी पर खोटी सिद्ध होने पर कूड़ेदान में झाड़कर बाहर फेंक दिया जाए।

समाज में नर-नारी के बीच बरती जाने वाली भेद-नीति, जन्म-जाति के आधार पर मानी जाने वाली ऊँच-नीच, भिक्षा-व्यवसाय, मृतक भोज, बाल विवाह, अनमेल विवाह जैसी अगणित कुप्रथाएँ प्रचलित हैं। इनमें सबसे भयंकर है—विवाहोन्माद, जिसमें गरीबों द्वारा अमीरों का स्वांग बनाकर अपने बरतन-कपड़े गँवा बैठने की मूर्खता की जाती है।

सभी जानते हैं कि खरचीली शादियाँ हमें दरिद्र और बेईमान बनाती हैं, फिर भी बुद्धिमान और मूर्ख इस सर्वनाशी कुप्रथा को छाती से लगाए बैठे हैं। इन सभी कुप्रचलनों में भ्रांति और अनीति बेतरह गुँथी हुई है, परंतु परंपरा के नाम पर, उन्हें अपनाया और सर्वनाश के पथ पर बढ़ते चला जा रहा है, यह दुर्बुद्धि रुकनी चाहिए।

इस धरती पर आठ अरब मनुष्यों में पाई जाने वाली भ्रांतियों, विकृतियों, दुष्प्रवृतियों से जूझना कठिन लगता भर है। युगमनीषा यदि उसे कर गुजरने के लिए तत्परता प्रकट करे तो सत्य में हजार हाथियों का बल होता है। इस उक्ति के आधार पर श्रेष्ठता का वातावरण भी उसी प्रकार बन सकता है, जिस प्रकार मुट्ठी भर लोगों ने अग्रगामी होकर दुष्टता भरे प्रचलनों से लोक-मानस को भ्रष्ट कर रखा है। ❑

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी-1

समय की पुकार सुनें

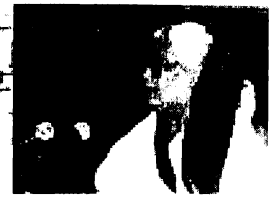

परमवंदनीया माताजी के व्याख्यानों की यह मौलिकता है कि वे आत्मीय परिजनों के मध्य प्रेमपूर्ण सुगम भाषा का भी प्रयोग सहजता से कर लेती हैं तो वहीं अपरिचित और अनजानों के लिए गुह्य ज्ञान का ऐसा संकेत कर देती हैं कि वो उनसे जुड़े बगैर रह नहीं पाते। अपने एक ऐसे ही प्रस्तुत उद्बोधन में वंदनीया माताजी अध्यात्म की मूलभूत परिभाषा देते हुए कहती हैं कि अध्यात्म का वास्तविक अभिप्राय कही जा रही बातों को जीवन में उतारने से है। वे परमपूज्य गुरुदेव का उदाहरण देते हुए कहती हैं कि पूज्य गुरुदेव ने इसी अध्यात्म को सच्चा व वास्तविक अध्यात्म माना और इन्हीं सूत्रों पर अपने जीवन को जीकर दिखाया। वंदनीया माताजी कहती हैं कि भक्ति एकांगी नहीं होती और उसका बड़ा विस्तृत परिणाम आता है, पर वो प्राप्त करने के लिए भक्ति का सच्चा होना अनिवार्य है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.......

सत्यं वद्—सदा सत्य बोलें

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

हमारे आत्मीय परिजनो! पता नहीं कि आपने उस स्वाति की बूँद का रसास्वादन किया है अथवा नहीं किया है। किया है तब तो आप धन्य हो गए और अब से आपका नया जन्म हो गया। अब जिस नए जन्म में आप आए हैं, शरीर तो यही रहना है; लेकिन आपका पिछला जो जन्म था, आपके रहन-सहन का जो तरीका था, वह सारा-का-सारा छूट जाना चाहिए। अब नए पाठ को याद करना चाहिए।

नया पाठ आपको याद हुआ कि नहीं हुआ, मालूम नहीं। उन्होंने कहा था—किसने? द्रोणाचार्य ने। उन्होंने शिष्यों को बताया—"सत्यं वद्।" अच्छा, दुर्योधन सामने आ गया।

उनने कहा—बोलो, तो सही बेटे! उसने बता दिया। युधिष्ठिर ने क्या कहा? युधिष्ठिर ने कहा कि भगवन्! अभी हमारी समझ में नहीं आया है। अभी हम इस लायक नहीं बने कि आपके इस प्रश्न का उत्तर दे सकें। हमें इस लायक बनने में समय लगेगा।

उनने कहा कि बेटे! जो यह कहते हैं कि हम बनकर दिखा देंगे, रटकर नहीं, बनकर दिखा देंगे। चाहे हमें विलंब ही क्यों न लग जाए? लेकिन हम बनने के लिए तैयार हैं। बेटे! विजय उन्हीं की होती है।

युधिष्ठिर की विजय हुई, क्योंकि उन्होंने इस श्लोक को अंत:करण में उतार लिया। उन्होंने जीभ में नहीं, अंत:करण में धारण कर लिया। जो चीज अंत:करण में समा जाती है, अरे वह तो सारे शरीर में समा गई। जो बात सारे शरीर में समा गई, तो फिर उसका तो कहना ही क्या है?

एकांगी नहीं होती भक्ति

भक्ति जिनके अंदर आ गई, अरे! उनका तो कहना ही क्या है? भक्ति अगर एकांगी रह गई, तो एकांगी ही रहेगी। वह तो समाज के और मानव के चरणों पर समर्पित होने ही वाली है।

बेटे! भक्ति कभी एकांगी नहीं होती। जितने भी हमारे संत और ऋषि, पैगंबर हुए हैं, उन्होंने जितनी प्राथमिकता समाजसेवा को दी है, उतनी भक्ति को नहीं दी है। दीपक है, वह आत्मपरिष्कार के लिए है; लेकिन समाजसेवा के बगैर हमारी भक्ति अधूरी रह जाती है और यही गुरुजी ने किया है।

गुरुजी ने केवल अपने गुरु के आदेश और निर्देश का पालन किया है। क्या आदेश है? क्या निर्देश है? जो दिशाधारा तय कर दी, वे उसी पर अटूट विश्वास, अटूट निष्ठा के साथ इतनी लंबी अवधि तक इतना लंबा जीवन पार कर पाए और समाज के लिए, राष्ट्र के लिए और सारे विश्व के लिए वह अनुदान जो देने में शायद ही कोई और समर्थ होता। इसमें घाटा पड़ा? नहीं, घाटा नहीं पड़ा। नफा हुआ और इतना नफा हुआ कि हम आपसे क्या कहें?

भावनाओं का करें योगदान

बेटे! जो ये कहते हैं कि हमारे पास बच्चा नहीं है, अरे बेटे! हमसे ले जाओ। एक-से-एक क्वालिटी के बच्चे हैं कि इनका क्या कहना है। आप ऐसे बच्चे पैदा कर सकते हैं? नहीं, आप नहीं, पैदा कर सकते। हम पैदा कर सकते हैं और कर रहे हैं और आगे भी करेंगे। हमें आपकी भावनाओं की आवश्यकता है। आपकी निष्ठा की आवश्यकता है और आपकी आस्था की आवश्यकता है।

आज बहुत बड़ी आवश्यकता है, जिसमें कि आप लोगों को बढ़-चढ़कर योगदान देना चाहिए। अब योगदान का समय आ गया है। कौन-सा योगदान दें?

बेटे! हम तो इस तरीके से चाहते हैं, जिस तरीके से भवानी ने तलवार दी थी शिवाजी को और यह कहा था कि अब चल रण में। रण में चल, यह अक्षय कटारी है। तेरा कुछ बिगड़ने वाला नहीं है। किसने कहा था? समर्थ गुरु रामदास ने कहा था। उन्होंने कहा—यह कटारी लेकर के चल।

स्वामी विवेकानंद से रामकृष्ण परमहंस ने कहा था। चाणक्य ने चंद्रगुप्त से कहा था और कृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि चला तीर। हम तुझे सिखाते हैं। नहीं साहब! मैं हार गया तो? अरे हार

तालाब में कमल और तट पर गुलाब का फूल खिला हुआ था।

गुलाब अकड़कर बोला—''कमल जी! आप दिखने में तो इतने विशालकाय हैं, पर सुगंध इतनी कम क्यों देते हैं? मुझे देखिए मेरा शरीर इतना विशालकाय भी नहीं है, पर मेरी सुगंध तो दूर-दूर तक फैलती है।''

कमल बोला—''भाई गुलाब! आप सुगंध बिखेरते हो और मैं सौंदर्य। हम दोनों मिलकर जो काम कर रहे हैं, वो अकेले नहीं किया जा सकता था।''

जीवन में उन्नति सहयोग और सहकार से ही संभव है, एकाकी अहंकार से नहीं।

कैसे जाएगा। जब हम तेरे साथ हैं, फिर हारने की तो कोई बात नहीं है। जीतने की बात है, तो क्या कोई वस्तु मिलेगी? अरे बेटे! वस्तु तो नहीं मिलेगी; लेकिन इतिहास के पन्नों पर अमर जरूर हो जाएँगे। वस्तु कोई चीज नहीं होती। वस्तु तो आने-जाने वाली है।

वस्तुएँ आती-जाती हैं

बेटे! लक्ष्मी भी तो आने-जाने वाली है। आज इसके घर, कल उसके घर में। यह कभी साथ नहीं जाने वाली। न साथ आए, न साथ जाए। खाली हाथ ही आए हैं और खाली हाथ ही जाना है।

यही तो विडंबना है व्यक्ति की कि वह यह सोचता रहता है कि ये कमा लूँ, ये रख लूँ और ये मेरे काम आएगी, मेरे नाती-पोतों के काम आएगी। फिर उसके कुछ काम आई? अरे तेरे काम में क्या आया है? कुछ नहीं, वही दो रोटी, एक धोती और कुरता।

अरे, यह तो वैसे भी पैदा हो सकता है। तो क्या इसी के लिए मरना-खपना है? नहीं, ऊँचे लक्ष्य के लिए आप लोगों को पैदा किया गया है, जहाँ तक मेरा अनुमान है। आपका पता नहीं कैसा है, पर मेरा अनुमान तो यही है कि आप लोगों को एक विशेष लक्ष्य के लिए पैदा किया है।

जिस तरीके से भगवान राम के समय में सभी देवताओं को रीछ-वानर के रूप में भेजा था। रीक्ष-वानर बनकर उनके सहयोगी के रूप में सारे-के-सारे देवता अवतरित हुए थे। इसी तरीके से भगवान कृष्ण के समय में सारे-के-सारे ग्वाल-बाल कौन थे? ये सब उनके सहयोगी थे, मित्र थे। अरे बेटा! वे सारे-के-सारे देवता थे, जिनके अंदर ये भावनाएँ पैदा हुईं कि हमको उनका साथ देना चाहिए।

भगवान से लेना नहीं? भगवान के सामने दानी होकर के जाना चाहिए। याचक होकर के नहीं, भिखारी होकर के नहीं। भगवान से भीख माँगेंगे। क्यों? भगवान ने इतनी बड़ी अमानत जो हमको दी है, उसका क्या होगा?

शरीर के रूप में, मस्तिष्क के रूप में भगवान ने तो दिया-ही-दिया है। फिर और कौन-सी चीज रह गई? जिसको कि हम भगवान से प्राप्त करने के लिए लालायित होते हैं। ऐसा हम क्यों करते हैं? हमारा अपना पुरुषार्थ, कर्म अपने साथ हैं। इनका उपयोग भगवान के निमित्त करना चाहिए।

अपनी जिम्मेदारी याद करें

बेटे! आपके मन में यह विचार आना चाहिए कि भगवान! जो आपकी आवश्यकता है, जो विश्व की माँग है और जो समाजसेवा है। हम उसके लिए अपने को समर्पित करते हैं। बच्चियाँ अभी यही भावगीत गा रहीं थीं। यहाँ से आप जाएँ, तो संकल्प लेकर के जाइए। संकल्प में बड़ी शक्ति होती है।

संकल्प में हजार हाथियों का बल होता है। यदि दृढ़ता के साथ संकल्प का पालन किया जाए तब? संकल्प का पालन, यदि दृढ़ता के साथ नहीं किया गया, तो आज कुछ कह गए, कल समाप्त। एक व्यक्ति रोज मेरे पास आए, रोज मेरे पाँव छुए, रोज रोवे और रोज शराब पीकर आए।

एक बार मुझसे रहा नहीं गया, मैंने उसे इतनी बुरी तरह से डाँटा और कहा कि अब आइंदा तू यहाँ शक्ल मत दिखाना। क्यों? शक्ल दिखाने की जरूरत नहीं है। इसलिए कि तू अपनी आदत छोड़ेगा नहीं और हर बार आएगा। पाँव छुएगा, मिन्नतें करेगा, पर तेरे ऊपर कोई आशीर्वाद काम नहीं कर सकता; क्योंकि भीतर का तेरा मनोबल कच्चा है।

मनोबल को बढ़ाने पर बड़े-से-बड़े जो भी दोष हों, वे छूट सकते हैं। यदि व्यक्ति इसी पर आमादा हो जाए कि इनको छोड़ना है, तो छूट जाएँगे। जिसको समाज के, राष्ट्र के उद्धार के लिए कुछ काम करना है, तो वह करेगा-ही-करेगा।

आपसे एक ही निवेदन है कि आज चलते-चलते अपने बच्चों से फिर दोबारा वही बात दोहरानी चाहूँगी, जो मैंने पहले प्रथम दिन आपसे कही थी। मैंने क्या-क्या कहा था ? मैंने यह कहा था कि सारा समय आपका और आपकी बीबी का परिवार पालने, खाना-बनाने का, बच्चा पैदा करने का, केवल यही जिम्मेदारी नहीं है।

समय का करें सदुपयोग

आपकी एक और जिम्मेदारी है, जो राष्ट्र के लिए, समाज के लिए और मिशन के लिए बहुत आवश्यक है। आपकी हमें भी आवश्यकता है। सारा-का-सारा हीरा जैसा समय आप गँवाते हुए चले जा रहे हैं।

समय की कोई कीमत नहीं है क्या ? आप समझ क्यों नहीं रहे हैं। इसी समय के सदुपयोग से लोग कहाँ-से-कहाँ पहुँच गए। उनकी योग्यता का क्या कहना ? समय तो सबके पास समान ही है।

एक व्यक्ति ने 80 भाषाएँ अपने समय में से ही पढ़ी थीं। जो भी व्यक्ति आगे बढ़े हैं। जिन्होंने भी महान कार्य किए हैं, वे समय के साथ में अपनी भावनाओं को, अपनी आस्था को, अपनी श्रद्धा को जोड़े रहे हैं। समय की कीमत जिन्होंने समझी है। वे ही आगे की पंक्ति में आए हैं और जिन्होंने उसकी कीमत नहीं समझी, वे पीछे की पंक्ति में रहे।

हम चाहेंगे कि हमारे परिजन पीछे की पंक्ति के बजाय, आगे की पंक्ति में आएँ। क्योंकि सारा-का-सारा विश्व आज देख रहा है कि क्या कोई मिशन ऐसा है ? क्या कोई ऐसी संस्था है ? क्या ऐसा कोई व्यक्तित्व है या ऐसा कोई ऋषि है, संत है, जो कि जलती हुई अग्नि पर पानी डाल सके ? जलती हुई लौ में घी डालने का काम तो कोई भी कर जाते हैं; लेकिन पानी का काम हरेक नहीं करता।

बेटे ! सारे विश्व की निगाहें हम पर हैं। जो कोई यहाँ आता है, वह धन्य होकर के जाता है और वह यह कहकर जाता है कि ऐसा मिशन तो हमने देखा ही नहीं। इतने बड़े ऋषि और संत, उनके इतने उच्चकोटि के विचार। विचार ही नहीं; बल्कि उन्होंने क्रिया के रूप में विचारों को रख दिया है। रख ही नहीं दिया, उसके अनुसार चलना और चलाना भी सिखा दिया है। चलते तो बहुत रहे हैं,

जोरों की आँधी आई। आँधी के साथ धरती पर पड़ी धूल उड़कर आसमान तक जा पहुँची। इस उपलब्धि पर इतराते हुए धूल बोली—''भला मेरे समान कोई इस दुनिया में ऊँचा है। जल, थल, नभ के साथ दसों दिशाओं में मैं ही तो व्याप्त हूँ।''

बादल ने धूल की गर्वोक्ति सुनी तो फट पड़ा और बादल फटते ही हुई वर्षा के साथ धूल धरती पर जा गिरी। अब धरती ने उससे पूछा—''रेणुके! तुमने अपनी यात्रा से क्या सीखा ?'' धूल बोली—''माँ! मैंने सीखा कि उन्नति पाकर कभी किसी को अहंकार नहीं करना चाहिए। अहंकारी का पतन निश्चित ही होता है।''

लेकिन किसी ने चलाया नहीं है। उन्होंने चलाकर के दिखाया है।

बेटे! आज तो हम आपको दिखाई पड़ रहे हैं। संभव है कि अगली बार आओ तो न दिखाई पड़ें। यह कोई जरूरी तो नहीं है; लेकिन आगे हो भी सकता है। यह कोई हमारे हाथ की बात नहीं है। दिखाई भी पड़ सकते हैं, लेकिन जो आज आपके अंदर स्फूर्ति भर रहे हैं, क्या मात्र शरीर ही भरेगा?

शरीर तो आगे नहीं रहेगा; लेकिन एक बात का ध्यान रखना कि हमने जो यह बगीचा लगाया है। इसमें बढ़ोतरी होने वाली है, चाहे शरीर रहे या न रहे। शरीर में रहते हुए, तो अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। व्यवस्था से लेकर कार्यक्रमों तक।

कार्यकर्त्ताओं से लेकर लेखन, मार्गदर्शन न जाने क्या-क्या, सारा दिन गुरुजी का इसी में जाता है। फलाने कार्यकर्त्ताओं को यह कहना है, उससे वह कहना है। इसे बुलाओ, उसे बुलाओ। हमारा सुबह-से-शाम तक का समय इसी में चला जाता है। शरीर से नहीं रहेंगे, तो सूक्ष्मरूप से और भी ज्यादा तीव्रगति-से काम कर सकेंगे।

युगसंधि पुरश्चरण

बेटे! यह विचार मत करना कि अरे गुरुजी-माताजी तो हैं ही नहीं। आप इस विशाल कार्य को देखें, विराट रूप को देखें। हम कहाँ नहीं हैं? बिलकुल हैं। आगे भी ऐसा ही शांतिकुंज आप पाएँगे, जो कि इस समय अब है; बल्कि इससे भी ज्यादा ही होगा। युगसंधि पुरश्चरण के लिए जो पहले दिन मैंने कहा था कि आपको यह प्रयास करना है कि यहाँ एक करोड़ व्यक्ति आएँगे। क्यों साहब! आप दोनों नहीं रहेंगे, तो किसके लिए आएँगे?

हम तो यह समझते हैं कि आपके लिए और गुरुजी के लिए एक करोड़ व्यक्ति आएँगे। नहीं बेटे! हमारे लिए और गुरुजी के लिए नहीं आएँगे; बल्कि उनके बनाए हुए उसूलों के लिए आएँगे। उनके लक्ष्य के लिए आएँगे, उनके मिशन के लिए आएँगे। जो केवल गुरुजी-माताजी के लिए आएगा, वह तो केवल पाँव छूकर के चला जाएगा और हमें अब पाँव नहीं छुवाने हैं।

बेटे! हम अब नाक तक भर गए हैं। अब तो हमें यही करना पड़ रहा है कि नौ दिन में बस एक दिन बैठ जाया करेंगे दोनों और आठ दिन की छुट्टी। इनको भी काम करने दो और हम भी काम करें।

पाँव छूने से ही क्या कोई लाभ है? यदि लाभ हुआ होता, तो जिस तरीके से विवेकानंद का हुआ था और कबीर का हुआ था, वैसा ही कुछ होता। कबीर की छाती पर केवल उनके गुरु का पैर लग गया था, उसी से उनको ज्ञान प्राप्त हो गया।

बेटे! आप तो बार-बार दिन में छत्तीस बार पाँव छूते हैं, फिर भी आपमें कोई परिवर्तन नहीं होता है। आखिर क्यों परिवर्तन नहीं हुआ? इसका एक रहस्य है। परिवर्तन इसलिए नहीं हुआ कि आपने हमें अपने भीतर से स्वीकार नहीं किया। भीतर से आप स्वीकार करेंगे, तो आप कुछ बदल जाएँगे, कुछ बन जाएँगे। फिर आपको पाँव छूने की जरूरत नहीं पड़ेगी और न हमें छुवाने की। आप कहें तो हम ही आपके पाँव छू लें, दिन में छत्तीस बार।

हम जानते हैं कि आज का जमाना यही है, बेटा! कि बड़ों को झुकना पड़ता है बच्चों के आगे तो कोई बात नहीं, हम भी झुक जाएँगे। हम तेरे पाँव छूते हैं। चल बन जा जाहिल। जाहिल घर में बैठा रहता है।

हमारी आवाज तो सुनता नहीं है। न हम दिखाई पड़ते हैं और न ही हमारी आवाज आपके अंत:करण में जाती है, तो फिर परिवर्तन कैसे होगा? माला को लेकर बैठा रहता है। उससे क्या होगा? जा वैकुंठ चला जा। वहाँ तेरे स्वागत के लिए खड़े हैं द्वारपाल।

समय की पुकार सुनें

बेटे! अब यह समय की पुकार है कि आपका ज्यादा-से-ज्यादा समय रचनात्मक दिशा में लगे। यह तो मैं कहने नहीं आई हूँ, जो कि ये लड़के कह चुके हैं, बता चुके हैं। जिस माध्यम से आपको जनसंपर्क के लिए जाना चाहिए। वो सारे-के-सारे माध्यम ये बच्चे बता चुके हैं।

आपको घर-घर जनसंपर्क के लिए दीपयज्ञों के बहाने जाना पड़ेगा। हाँ बेटे! घर-घर में दीपयज्ञ। पहले तो यह था कि ये हल्ला-गुल्ला के होंगे, बड़े जबरदस्त होंगे। जबरदस्त का तो हमने सफाया कर दिया है। दीपयज्ञ सादगीपूर्वक ही संपन्न होंगे।

अपने लड़कों को यहाँ के काम में लगाएँगे। कितना बड़ा मिशन है? ये लड़के बाहर-ही-बाहर घूमते हैं, सो यहाँ इनको ठोंक-पीटकर हमको ठीक करना है। इनके अंदर हमें और भी प्रेरणा देनी है; ताकि ये सारे संसार को प्रेरणा देने में सक्षम हो सकें। परिवार विस्तृत होता जा रहा है, उसका मार्गदर्शन भी आवश्यक है।

हमारा समय तो आ गया चला-चली का और ये घूमते फिरेंगे, तो फिर रोएँगे। अरे, हमारे माँ-बाप कहाँ गए? इसलिए हमने इनको रोका है। आगे वहीं क्षेत्रों में ही छोटे-छोटे कार्यक्रम होंगे और घर-घर में जो दीपयज्ञ का कार्यक्रम बनाया गया है। यह एक आंदोलन है। इस आंदोलन को आप गति दीजिए।

क्यों साहब! इसको गति देने से क्या लाभ है? इससे बेटे! इतना लाभ कि जो विभीषिकाएँ छाई हुई हैं, जो प्रदूषण है, उसको समाप्त करने में यह सहायक होगा और हर घर में श्रेष्ठ संस्कार पैदा होंगे। आप भी करिए और ये लड़कियाँ भी करें। नहीं साहब! ये लड़कियाँ क्यों करेंगी? इन लड़कियों को क्या समझ रखा है? आपसे कहीं ज्यादा हैं? देख लो, अब राजीव गांधी ने कल की घोषणा में कहा है कि इतने करोड़ नारी जागरण के लिए निवेश करेंगे।

इस कथन का मतलब है ऋण देंगे। उस ऋण की तो हमें आवश्यकता नहीं है। लड़कियों को काहे की आवश्यकता है? इनको आवश्यकता है भावनाओं की और श्रद्धा की। इनको भावनात्मक दृष्टि से आप ऊँचा उठाइए। आगे बढ़ने का अवसर दीजिए; ताकि जो आप कर रहे हैं, वे भी आपके समकक्ष हो जाएँ। झोला पुस्तकालय आप चलाते हैं। ये भी झोला पुस्तकालय चलाएँगी। आप ज्ञानरथ चलाते हैं, तो ये भी चलाएँगी। क्यों, इनमें क्या बात हो गई? इन्हें भी ज्ञानरथ चलाना चाहिए। नहीं साहब! ये तो लड़कियाँ हैं, महिलाएँ हैं और ये तो बुद्धू होती हैं और ये तो दब्बू होती हैं। नहीं, ये दब्बू नहीं होतीं, आप दब्बू होते हैं; जो इन्हें दब्बू और बुद्धू बनने पर मजबूर करते हैं। ये काहे की दब्बू हैं।

बेटे! इनको उठाया नहीं गया, आगे बढ़ाया नहीं गया है। जिस दिन ये हिम्मतवाली बन जाएँगी, तो आपको एक कोने में फेंक देंगी। अच्छा ऐसा? हाँ, बिलकुल और अगले दिनों ये ऊँचा उठने वाली ही हैं, यह समझ लेना अन्यथा पछताओगे। रचनात्मक गतिविधियों में इनका भी उपयोग किया जाना चाहिए।

बाल संस्कारशाला से लेकर, विवाहदिन, जन्मदिन आदि जो भी आपके संस्कार मनाए जाते हैं। वे सारे-के-सारे संस्कार ये भी मनाएँ और आप भी मनाइए। अब तो गुरुजी ने बहुत कुछ छोटा और सरल कर दिया है। जिनको श्लोक बोलना नहीं आता, वे सूत्रपद्धति से आसानी से संस्कार संपन्न करा सकते हैं।

दीप प्रज्वलित कर लीजिए, गायत्री मंत्र से आहुतियाँ दीजिए और आपका दीपयज्ञ हो गया। कोई भी घर ऐसा न रहे, जिस घर में अखण्ड ज्योति पत्रिका और सत्साहित्य न पहुँचे।

यह गुरुजी की वाणी है। गुरुजी की लेखनी है। इसके माध्यम से उनके विचार लोगों तक पहुँचेंगे और उन विचारों से समाज में जो परिवर्तन आएगा; वह इस तरीके से आएगा, जिस तरीके से अमेरिका की हैरियट बीचर स्टो नाम की एक महिला ने 'टाम काका की कुटिया' नाम की एक पुस्तक लिखी थी।

उससे इतनी क्रांति हुई, इतनी क्रांति हुई कि काले और गोरे का जो भेद था, वह समाप्त हो गया। उसमें जब वे विजयी हुईं, तो उसको मेज पर खड़ा कर दिया गया। उन्होंने कहा कि इस छोटी-सी, नाटी-सी महिला का कमाल है, जो इन्होंने ऐसी क्रांतिकारी पुस्तक लिखी कि सारे देश में तहलका मचा दिया। यह कमाल उस पुस्तक में भावनात्मक शब्दों का था।

[**क्रमशः अगले अंक में समापन**]

अकबर के दरबार में एक विचित्र समस्या प्रस्तुत हुई। तीन सैनिकों के बीच झगड़ा हो गया। एक का कहना था कि सबसे बड़ा रक्षक भगवान है, दूसरा कहता था कि जिसके सहायक और लोग हों, भगवान उन्हीं की रक्षा करते हैं और तीसरे का कहना था कि जो अपनी रक्षा आप करता है, भगवान उसी की रक्षा करते हैं। अकबर ने बीरबल से यह समस्या सुलझाने को कहा तो बीरबल ने उचित अवसर पर उत्तर देने का वायदा किया।

कुछ समय पश्चात दक्षिण में लड़ाई छिड़ गई। बीरबल ने तीनों सैनिकों को युद्ध पर भेजा। जिसको यह विश्वास था कि कोई परिश्रम आवश्यक नहीं और भगवान स्वयं ही रक्षा कर लेंगे, उसे निःशस्त्र; दूसरा, जो सहयोग पर विश्वास रखता था, उसके साथ एक सशस्त्र सैनिक और तीसरा, जो अपने परिश्रम से परमात्मा की सहायता पर विश्वास रखता था, उसे शस्त्र सहित भेजा। पहला मृत्यु को प्राप्त हुआ, दूसरा बंदी बना लिया गया और तीसरा अंत तक लड़ा तथा विजयी बन वापस लौटा। विजय की खुशी में एक खुशी इस उत्तर की भी जोड़ी गई। अकबर ने निर्णय सुनाया कि जो अपनी रक्षा करता है, वही अपने धर्म-संस्कृति की रक्षा करने में समर्थ होता है।

महिलाओं में स्वास्थ्य चेतना की जागरूकता

समाज में स्वास्थ्य चेतना उत्पन्न करने का प्रयास करना चाहिए। आज की नारी शिक्षित है, वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक भी है, तब भी उसमें स्वास्थ्य के प्रति सजगता का अभाव है। स्त्री को स्मरण रखना चाहिए कि वह परिवार की धुरी है।

वही परिवार को एक सूत्र में पिरोकर रख सकती है। घर-परिवार का ध्यान रखते हुए सदैव अपनी अवहेलना करती देखी जाती है। आज जब कामकाजी महिलाओं की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। ऐसे में अपने स्वास्थ्य के प्रति उनका जागरूक होना आवश्यक है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन से उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार विश्व की 50 प्रतिशत से भी अधिक महिलाएँ रक्ताल्पता की शिकार हैं। भारत में यह प्रतिशत और अधिक हो सकता है। यहाँ गर्भवती ही नहीं, सामान्य महिलाएँ भी कैल्सियम, आयरन और रक्त की कमी से पीड़ित हैं।

आश्चर्यजनक बात यह है कि गाँवों में अशिक्षा और जागरूकता न होने के कारण स्त्रियाँ स्वास्थ्य संबंधी कठिनाइयों से जूझ रही हैं, लेकिन लगभग 40 प्रतिशत शहरी महिलाएँ रक्ताल्पता की शिकार हैं।

आमतौर पर भोजन में पोषक तत्त्वों के अभाववश शहर में रहने वाली महिलाओं का पोषण ठीक ढंग से नहीं हो पाता। यह भी सच है कि महिलाएँ घर भर के स्वास्थ्य की चिंता तो करती हैं, किंतु अपने प्रति बहुत लापरवाह होती हैं। सामान्यत: प्रतिदिन उन्हें 30 ग्राम लौहतत्त्व की आवश्यकता होती है, परंतु वे 10-15 ग्राम से अधिक नहीं लेतीं। गर्भवती स्त्री को 50 ग्राम लौहतत्त्व प्रतिदिन लेना चाहिए, किंतु वे आवश्यक मात्रा में लौहतत्त्व, कैल्सियम, विटामिन आदि से वंचित रहती हैं।

आजकल महिलाओं को पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएँ सुलभ कराई जा रही हैं, फिर भी उनमें हीमोग्लोबिन की कमी चिंताजनक है। सरकार ने गर्भवती स्त्रियों की स्वास्थ्य-रक्षा हेतु अनेकों महत्त्वपूर्ण योजनाएँ लागू की हैं, लेकिन दुर्भाग्यवश महिलाएँ स्वयं ही अपने स्वास्थ्य की अनदेखी करती हैं।

एक महिला में सामान्यत: हीमोग्लोबिन का स्तर 12.5 mg/dl होना चाहिए, परंतु अधिकतर महिलाओं में यह 10 से भी कम पाया जाता है। यदि आम लड़कियों के हीमोग्लोबिन की जाँच करवायी जाए तो वह भी कम ही होगा। उच्च वर्ग की स्त्रियों में डाइटिंग के कारण हीमोग्लोबिन कम हो रहा है।

कुछ स्त्रियाँ स्वास्थ्य की अपेक्षा सौंदर्य को अधिक महत्त्वपूर्ण मानती रही हैं। वे मोटापा घटाने और खूबसूरती पाने के लिए भरसक प्रयत्न करती हैं। जबकि उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि वास्तविक सौंदर्य उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य से ही प्राप्त होगा और उत्तम स्वास्थ्य संतुलित व पौष्टिक आहार पर निर्भर है; जिससे शरीर के सभी अंग भली भाँति क्रियाशील रहते हैं।

कायिक सौंदर्य के प्रति सचेत महिलाएँ पौष्टिक आहार के बजाय गोलियों से कैल्सियम, लौह तत्त्व विटामिन आदि की कमी दूर करने का प्रयास करती हैं।

यह भी उपयुक्त नहीं है; क्योंकि इससे शरीर का समुचित पोषण संभव नहीं है। खेद की बात है कि सामाजिक तौर पर महिलाओं के स्वास्थ्य की चिंता नहीं की जाती। घरों में भी आमतौर पर यही धारणा है कि उसे अधिक देख-भाल की जरूरत नहीं है।

लड़कियों के बीमार पड़ने पर उनकी ओर प्राय: ध्यान नहीं दिया जाता। समाज में तो स्त्री के स्वास्थ्य के प्रति चेतना का अभाव है ही, मगर शिक्षित व स्वावलंबी महिलाएँ भी अपनी सेहत को सदैव दूसरे क्रम पर रखती हैं।

जब तक कोई गंभीर तकलीफ नहीं होती, तब तक वे चिकित्सक के पास नहीं जाती हैं। स्वास्थ्य पर होने वाला व्यय उन्हें व्यर्थ लगता है। जबकि स्वयं के स्वास्थ्य के प्रति स्त्री की सजगता उसके सशक्तीकरण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण सोपान है।

पहला सुख निरोगी काया, जैसी बात बारंबार सुनने के बावजूद नीरोग रहने की दिशा में स्त्री की चेष्टा संतोषजनक नहीं है। प्राय: उसकी यह मानसिकता होती है कि घर के सभी सदस्य भरपेट भोजन करें, स्वस्थ रहें—इसी में नारी जीवन की सफलता है।

अशिक्षित और अल्पशिक्षित ही नहीं, सुशिक्षित और उच्च पदासीन नारियाँ भी अधिकतर यही सोचती हैं; जबकि प्रत्येक स्त्री को यह सोचना चाहिए कि वह परिवार की एक अहम सदस्या है; जिसके स्वास्थ्य पर ही संपूर्ण परिवार का स्वास्थ्य सुख और प्रसन्नता निर्भर है।

यदि वे स्वयं अस्वस्थ होंगी तो परिवार का ध्यान कैसे रख पाएँगी। बहुत कम परिवार या पुरुष ऐसे हैं, जो घर में स्त्री के भोजन और स्वास्थ्य की परवाह करते हैं। सभी गृहणियों और कामकाजी महिलाओं को स्वयं ही अपनी सेहत का भी ध्यान रखना चाहिए।

छोटी-सी असावधानी से कभी-कभी गंभीर रोग हो जाते हैं यह नहीं भूलना चाहिए। इसका कारण है तनाव, चिंता, पौष्टिक भोजन का अभाव आदि। पहले महिलाएँ कैरियर के प्रति इतनी जागरूक नहीं थीं। अत: वे कम ही बीमार दिखाई देती थीं, लेकिन अब जॉब और कैरियर की चाहत से उनमें तनाव और बीमारी की समस्या बढ़ रही है। तनाव का असर दिमाग पर होता है, जो उनके स्वास्थ्य के लिए घातक सिद्ध हो सकता है।

इस स्थिति से बचने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि महिलाओं को अपना और परिवारजनों का हर तीन महीने में स्वास्थ्य-परीक्षण करवाने की आदत डालनी चाहिए। यदि हर तीन माह में संभव न हो तो वर्ष में कम-से-कम एक बार तो ऐसा कर ही सकती हैं। इससे कोई भी बीमारी आरंभिक अवस्था में ही पकड़ में आ जाएगी और उससे छुटकारा पाना आसान होगा।

प्राय: स्त्रियाँ मोटापा, मधुमेह, रक्ताल्पता, जोड़ों के दरद आदि ऐसी तकलीफों से जूझ रही होती हैं। जिनका आरंभ ही गलत जीवनशैली के कारण होता है। अत: इक्कीसवीं सदी में महिलाओं को चाहिए कि वे अपने तन-मन दोनों की सुंदरता के लिए जागरूक व सचेष्ट हों।

उन्हें अपनी जीवनचर्या व्यवस्थित रखनी चाहिए। नियमित रूप से चिकित्सक से अपनी स्वास्थ्य जाँच कराना चाहिए। स्वयं रोगमुक्त रहें और अपने परिजनों को भी रोगमुक्त रखने हेतु समय-समय पर चिकित्सक से सलाह लेती रहें। स्मरण रखें कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है।

स्वस्थ प्राणी ही जीवन का आनंद ले सकता है। स्त्रियों के संदर्भ में तो यह भी कहा जा सकता है कि उनकी स्वास्थ्य चेतना ही सशक्तीकरण का आधार है। आज उस स्वास्थ्य चेतना को जागरूक रखने की आवश्यकता है। ❑

अविस्मरणीय रहा विश्वविद्यालय का दीक्षांत समारोह

प्राकृतिक हरीतिमा से आच्छादित देव संस्कृति विश्वविद्यालय का जीवंत एवं जाग्रत प्रांगण किसी तीर्थ से कम नहीं है। अपनी प्रगति यात्रा में इसने अनेकों का न केवल उद्धार किया है, वरन उन्हें अन्यों के लिए प्रकाशस्तंभ के रूप में भी प्रतिष्ठित किया है। यही कारण है कि यहाँ की देवात्माओं से संपर्क में आने के उपरांत व्यक्ति इनके प्रत्यक्ष सान्निध्य का लाभ उठाने से वंचित नहीं रहना चाहता व किसी-न-किसी बहाने यहाँ चले ही आता है।

तीर्थसेवन के लाभ को उठाने हाल ही में गलगोटिया कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग एंड टेक्नॉलोजी (ग्रेटर नोएडा) के दो विभागों के विभागाध्यक्ष के साथ कई छात्र-छात्राओं का विश्वविद्यालय परिसर में आगमन हुआ। आगमन पर उन्होंने प्रतिकुलपति महोदय से भेंट कर मार्गदर्शन प्राप्त किया।

इसके बाद उन्होंने अखिल विश्व गायत्री परिवार एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के बारे में जाना। तत्पश्चात गुरुकुल परंपरा से चल रहे विश्वविद्यालय का भ्रमण कर चल रही विभिन्न गतिविधियों से परिचित हुए।

राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्धि पाने के क्रम में 36वें नेशनल गेम्स में भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय की प्रतिभागिता सुनिश्चित हुई। इस बार योगासन स्पोर्ट्स प्रतियोगिता को भी नेशनल गेम्स में शामिल किया गया था। इसमें देव संस्कृति विश्वविद्यालय की बी०एस-सी० योग विज्ञान तृतीय सेमेस्टर की छात्रा स्नेहलता ने आर्टिस्टिक ग्रुप में तृतीय स्थान प्राप्त कर विश्वविद्यालय का नाम रोशन किया।

प्रतिकुलपति जी ने स्नेहलता का उत्साहवर्द्धन करते हुए भविष्य में और शानदार सफलता हासिल करने की शुभकामनाएँ दीं। विदित हो कि 36वें नेशनल गेम्स का आयोजन गुजरात के कई स्थानों पर किया गया था। इस नेशनल गेम का उद्घाटन देश के यशस्वी प्रधानमंत्री जी ने किया था।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय के षष्ठ दीक्षांत समारोह के अवसर पर जीवन-विद्या के आलोक केंद्र देव संस्कृति विश्वविद्यालय में प्रेरणा, सम्मान और उत्साह के नवीन रंगों का सृजन हुआ। दिनांक—1 नवंबर, दिन मंगलवार को छठा दीक्षांत समारोह आयोजित किया गया।

दीक्षांत समारोह में विद्यार्थियों को डिग्री प्रदान की गई। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि लोकसभा अध्यक्ष माननीय श्री ओम बिरला जी रहे। माननीय कुलाधिपति जी ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। इस दौरान प्रतिकुलपति जी ने कहा कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय में शिक्षा के साथ संस्कार भी दिया जाता है। यहाँ से शिक्षित विद्यार्थी जहाँ भी जाएँ दुखियों का सहारा बनें। अँधेरे के लिए उजाला बनें।

इस अवसर पर माननीय लोकसभा अध्यक्ष एवं कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री बिरला जी ने कहा कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को केवल आध्यात्मिक और आधुनिक शिक्षा ही नहीं, बल्कि जीवन प्रबंधन भी सिखाया जाता है। व्यक्ति और चरित्र निर्माण भी होता है। दो दशक में विश्वविद्यालय की ख्याति राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बनी है। दुनिया में जो कुछ भी परिवर्तन हो रहा है, उसे देखते हुए भारत ने नई दिशा दुनिया को दी है।

माननीय बिरला जी ने यह भी कहा कि विज्ञान और आध्यात्मिकता के सम्मिश्रण से आने वाले समय में भारत दुनिया का नेतृत्व करेगा। उन्होंने विद्यार्थियों से यहाँ से अर्जित ज्ञान के प्रकाश को समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुँचाने का आह्वान किया। समारोह के अध्यक्ष परम श्रद्धेय कुलाधिपति जी ने कहा कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय एकमात्र विश्वविद्यालय है, जहाँ ज्ञानदीक्षा समारोह होता है। इसके माध्यम से युवाओं को चरित्रवान एवं निष्ठावान छात्र बनने की प्रतिज्ञा कराई जाती है। उन्होंने यह भी कहा कि यहाँ से उत्तीर्ण होकर नए जीवन में प्रवेश करने वाले छात्र-छात्राएँ देव संस्कृति विश्वविद्यालय से प्राप्त गुणों का अन्यों में भी प्रसार करेंगे।

दीक्षांत के इस विशिष्ट अवसर पर परम श्रद्धेय कुलाधिपति जी, आदरणीया अमिता बिरला जी, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के माननीय कुलपति जी, प्रतिकुलपति जी, शेफाली जीजी समेत कई विशिष्ट अतिथि उपस्थित रहे। मुख्य अतिथि माननीय बिरला जी ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय टॉपर उर्वशी शर्मा, वंदना आर्य, चित्रा कश्यप, रूपम, आकर्षित मौर्य को उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया।

दीक्षांत के अनुपम समारोह में वर्ष 2017 से 2022 तक के छात्र-छात्राओं को उपाधि प्रदान की गई। इनमें छह विश्वविद्यालय टॉपर, 72 पी-एच०डी० और 2589 स्नातकोत्तर, स्नातक, डिप्लोमा और सर्टिफिकेट विद्यार्थी शामिल हैं। 2589 पीजी, यूजी, डिप्लोमा, सर्टिफिकेट विद्यार्थियों में से 1475 छात्राएँ हैं।

विदित हो कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय में इस दीक्षांत समारोह से पूर्व अभी तक 5 दीक्षांत समारोह आयोजित हो चुके हैं। प्रथम दीक्षांत समारोह में बतौर मुख्य अतिथि तत्कालीन राष्ट्रपति स्व० भैरो सिंह शेखावत जी, द्वितीय दीक्षांत समारोह में स्व० डॉ० एपीजे अब्दुल कलाम जी, तृतीय दीक्षांत समारोह में उत्तराखंड की भूतपूर्व राज्यपाल मार्गरेट अल्वा जी, चतुर्थ दीक्षांत समारोह में तत्कालीन राष्ट्रपति श्री प्रणब मुखर्जी जी एवं पंचम दीक्षांत समारोह में शांति के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित श्री कैलाश सत्यार्थी जी की गरिमामयी उपस्थिति रह चुकी है। ❑

धरती की गोद में दो बीज पड़े थे। एक में से अंकुर फूटे और वह ऊपर की ओर बढ़ने लगा तो दूसरा बीज बोला—"भैया! ऊपर मत जाना, वहाँ भय है कि दूसरे तुम्हें पैर के नीचे रौंद डालेंगे।" यह सुनकर भी पहला बीज मुस्कराता हुआ ऊपर की ओर बढ़ चला। सूर्य का प्रकाश, हवा व पानी पाकर अंकुर पौधे में बदल गया।

धीरे-धीरे वह पूर्ण विकसित वृक्ष बना और संसार से विदा होते समय अपने जैसे असंख्य बीज छोड़कर आत्मसंतोष अनुभव करता रहा। दूसरा बीज जहाँ-का-तहाँ रह गया। जीवन में प्रगति वही कर पाते हैं, जो चुनौतियों से लड़ने का जज्बा रखते हैं, दूसरे तो पलायनवादी ही कहलाते हैं।

मौसम को प्रभावित करते हैं वायुमंडल के प्रदूषक

मौसम विज्ञान संबंधी हाल में किए गए अनुसंधानों से पता चला है कि पृथ्वी के मौसम में धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा है। शोधों से प्राप्त आँकड़ों से संकेत मिलता है कि सन् 1880 से सन् 1940 के बीच पृथ्वी के वायुमंडल के औसत तापमान में 0.6 डिगरी सेल्सियस की वृद्धि हुई। इसी प्रकार सन् 1940 से 1970 के बीच इसके औसत तापमान में 0.3 डिगरी सेल्सियस का ह्रास हुआ।

वैज्ञानिकों के मतानुसार पृथ्वी के तापमान में उपर्युक्त परिवर्तन इस ग्रह के ताप-बजट में परिवर्तन को प्रतिबिंबित करता है। तापमान में परिवर्तन तभी आता है, जब वायुमंडल के घटकों में परिवर्तन आता है। संसार भर के वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पृथ्वी के मौसम में उपर्युक्त परिवर्तन वायुमंडलीय प्रदूषण से प्रभावित है।

मानव के दैनिक क्रियाकलापों के उत्पाद के रूप में अनेक प्रकार के विजातीय पदार्थ पृथ्वी के वातावरण में पहुँचते रहते हैं। इन विजातीय पदार्थों में कार्बन-डाइऑक्साइड तथा धूल-कण की भूमिका पार्थिव मौसम में परिवर्तन लाने में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

वातावरण में कार्बन-डाइऑक्साइड के एक अणु का आवासकाल अनेक वर्षों का होता है। ईंधनों के जलने से उत्पन्न कार्बन-डाइऑक्साइड वायु-संचालन द्वारा वायुमंडल के सभी भागों में अच्छी तरह मिश्रित हो जाती है।

अनुसंधानों से पता चला है कि खनिज तेल तथा खनिज कोयले को जलाने से अरबों मीट्रिक टन कार्बन-डाइऑक्साइड प्रतिवर्ष वायुमंडल में पहुँचती है।

हवाई द्वीप तथा अंटार्कटिका जैसे दूरदराज के क्षेत्रों के ऊपर स्थित वायुमंडल में उपस्थित कार्बन-डाइऑक्साइड के परिणाम की सही माप से पता चला है कि उपर्युक्त प्रकार का मिश्रण काफी अच्छी तरह चलता रहा है।

विश्व स्तर पर वायुमंडल में कार्बन-डाइऑक्साइड की वृद्धि सन् 1954 से अब तक लगभग 0.25 प्रतिशत अंकित की गई।

मौसम को प्रभावित करने वाले दूसरे प्रमुख वायुमंडलीय घटकों में शामिल हैं धूल-कण। अध्ययनों से पता चला है कि भू-सतह के निकट स्थित वायुमंडल में प्रवेश करने वाले धूल-कणों का औसत आवासकाल सिर्फ चंद दिनों का ही होता है।

धूल-कणों का स्रोत सर्वत्र इतना अधिक व्याप्त है कि ये कण वायुमंडल के काफी बड़े भाग में फैलकर अपना प्रभाव दिखाते हैं, परंतु इन कणों की वायुमंडल में सघनता ऊँचे स्थानों पर या दूर-दराज के स्थानों पर सघनता की तुलना में बहुत कम रहती है, जो शहरी क्षेत्रों या औद्योगिक क्षेत्रों में पाई जाती है। पूरे विश्व स्तर पर वायुमंडल में उपस्थित धूल-कणों की संपूर्ण मात्रा लगभग दस लाख मीट्रिक टन है।

वायुमंडल में कार्बन-डाइऑक्साइड तथा धूल-कण दोनों की उपस्थिति हमारे मौसम के लिए

बहुत ही हानिकारक पाई गई है। ये दोनों ही घटक पार्थिव ताप-बजट में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने की क्षमता रखते हैं।

जहाँ तक कार्बन-डाइऑक्साइड द्वारा पड़ने वाले प्रभाव का प्रश्न है तो अध्ययनों से पता चला है कि यह लंबी तरंग-दैर्ध्य वाले उन तापीय विकिरणों को सोख लेता है जो भू-सतह से निकलकर बाह्य अंतरिक्ष की ओर गमन करने का प्रयास करते हैं एवं शोषित किए गए इन ताप विकिरणों में से कुछ अंश को यह पुनः भू-सतह की ओर वापस लौटा देता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वायुमंडल में उपस्थित कार्बन-डाइऑक्साइड एक प्रकार से हरित गृह (ग्रीन हाउस) प्रभाव पैदा करता है तथा पृथ्वी के मौसम को गरम करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। अतः कार्बन-डाइऑक्साइड विश्वस्तरीय तापन (ग्लोबल वार्मिंग) का एक प्रमुख स्रोत माना जाता है।

जहाँ तक वायुमंडल में उपस्थित धूल-कणों की भूमिका का प्रश्न है, इसकी स्थिति कार्बन-डाइऑक्साइड की तुलना में बहुत अधिक जटिल है। ये धूल-कण वायुमंडल से गुजरकर भू-सतह की ओर जाने वाले सौर विकिरण के एक अंश को शोषित कर लेते हैं तथा दूसरे अंश को बाह्य अंतरिक्ष की ओर विकीर्ण कर देते हैं। इसका अंतिम प्रभाव पृथ्वी पर किस प्रकार पड़ेगा, यह कई घटकों पर निर्भर करता है।

इन घटकों में शामिल हैं—सौर विकिरण के शोषण तथा उन्हें पुनः अंतरिक्ष की ओर वापस लौटाने में धूल-कणों की दक्षता, भू-सतह से धूल-कणों के ठीक नीचे स्थित भू-सतह के गुण आदि। इन समस्याओं से संबंधित अध्ययनों में प्रायः मान लिया जाता है कि धूल-कणों के द्वारा अंतरिक्ष में वापस भेजे जाने वाले विकिरण का परिणाम उनके द्वारा अवशोषित विकिरण के परिणाम से अधिक है।

इसका निष्कर्ष यह हुआ कि इसके कारण पृथ्वी का मौसम धीरे-धीरे ठंढा होता जाएगा। अधिक ऊँचाई वाले धूल-कणों जैसे ज्वालामुखी से निकलने वाले धूल-कण के द्वारा निश्चित रूप से मौसम को ठंढा होता देखा गया है, परंतु कम ऊँचाई वाले धूल-कण, जो मानवीय क्रियाकलापों के कारण पैदा होते हैं; जैसे खनिजों के खनन या कारखानों की वजह से वे मौसम को गरम करने में अपना योगदान देते हैं।

वायुमंडलीय कार्बन-डाइऑक्साइड के कारण मौसम पर पड़ने वाले प्रभाव के संबंध में मनावे नामक एक अमेरिकी वैज्ञानिक तथा उसके साथियों ने एक सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

इस सिद्धांत के अनुसार वायुमंडल में 10 प्रतिशत कार्बन-डाइऑक्साइड की वृद्धि होने पर निम्न ऊँचाई वाले वायुमंडल के तापमान में औसत रूप से 0.3 डिगरी सेल्सियस की वृद्धि हो जाती है। साथ ही 10 किलोमीटर से अधिक ऊँचाई पर स्थित वायुमंडल के तापमान में कुछ कमी आ जाती है।

अब संसार के लगभग सभी वैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि कम ऊँचाई पर उपस्थित धूल-कणों के कारण तापमान पर पड़ने वाला प्रभाव ठंढक उत्पन्न न करके कुछ गरमी उत्पन्न करता है तथा ईंधनों के जलने से उत्पन्न कार्बन-डाइऑक्साइड द्वारा उत्पन्न गरमी के पूरक के रूप में भी कार्य करता है।

इसी आधार पर वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि वायु-प्रदूषण के कारण सन् 1880 से सन्

1940 तक पृथ्वी के वायुमंडल के तापमान में औसत 0.6 डिगरी सेल्सियस की वृद्धि हुई। यह अनुमान विश्व स्तर पर किए गए अनेक शोधों के आधार पर लगाया गया है।

वायुमंडल में कार्बन-डाइऑक्साइड तथा धूल-कणों की वृद्धि के फलस्वरूप तापमान में परिवर्तन के कारण बादलों के निर्माण की गति काफी अधिक प्रभावित हो सकती है। धूल-कणों की उपस्थिति की वजह से जल-बूँदों के निर्माण हेतु असंख्य नाभिकों की उपलब्धता के कारण बादलों के निर्माण की गति काफी बढ़ सकती है। ये सभी घटनाएँ पृथ्वी के मौसम को निश्चित रूप से प्रभावित करती हैं। अतः आवश्यक है कि हम अपनी आवश्यकताओं को कम करें और वायुमंडल को प्रभावित करने से बचें। प्रकृति और जीवन के बीच संतुलन ही एकमात्र समाधान है। ❑

राजसूय यज्ञ के समापन के अवसर पर महाराज तुर्वस ने एक बृहत् सांस्कृतिक समारोह का आयोजन किया। राजा के विशेष आग्रह पर महर्षि जैमिनी भी इस समारोह में सम्मिलित हुए। देवपूजन के पश्चात राजकुमारी अर्णिका ने भावभरी नृत्य-नाटिका प्रस्तुत करनी प्रारंभ की।

जहाँ एक ओर पूरी सभा इस प्रस्तुति को मुग्ध होकर देख रही थी, वहीं दूसरी ओर महर्षि के आँखों से अविरल अश्रुधार बह निकली। जैसे ही राजकुमारी की दृष्टि महर्षि पर पड़ी, उसके पाँव वहीं रुक गए। यह देख महाराज तुर्वस ने भी अपनी सभा विसर्जित कर दी। एकांत होते ही, राजकुमारी ने महर्षि से पूछा—''क्या मुझसे कोई भूल हुई महर्षि? आपकी आँखों से गिरते इन आँसुओं का कारण पूछ सकती हूँ?''

महर्षि बोले—''नहीं पुत्री! तुम्हारी प्रस्तुति तो त्रुटिहीन है। ये अश्रु तो भविष्य की आशंका के हैं। मुझे दिखाई पड़ता है कि आज जो संगीत शास्त्रों पर आधारित है और मानवीय चेतना में संस्कार जाग्रत करने का माध्यम है, वही एक दिन कामुकता और अश्लीलता भड़काने का साधन बनेगा। कलियुग में ऐसा समय भी आएगा कि जब लोग संगीत को दैवी गुणों के लिए नहीं, दूषित भावनाओं के विस्तार के लिए उपयोग करेंगे।'' चिंतातुर राजकुमारी अर्णिका ने प्रश्न किया—''क्या कोई उपाय है महर्षि! जिससे भारतीय संगीत की परंपरा अक्षुण्ण रहे और इसकी मर्यादा को चोटिल न होना पड़े?''

महर्षि ने उत्तर दिया—''उपाय एक ही है कि भारतीय चिंतन में उस वैदिक संस्कृति के गुण बीज रूप में सुरक्षित रहें, जो आज इसे गौरवान्वित करने का आधार बने हैं।'' आज महर्षि जैमिनी की आशंका सत्य होती दिखाई दे रही है, जहाँ कामुक एवं भड़कीला संगीत लोकप्रिय है और शास्त्रीय संगीत लुप्त-सा प्रतीत होता है। यदि संस्कृति का पुनरोत्थान करना है तो संगीत की दिशा भी बदलनी होगी; क्योंकि भगवान के लिए समर्पित संगीत ही सामाजिक समरसता ला सकता है।

अपनों से अपनी बात

नवरात्र-साधना का मूल उद्देश्य

नवरात्र-साधना के अनुष्ठान को करने का उद्देश्य प्रत्येक साधक के लिए एक ही होता है और वो साधना के शिखर को स्पर्श करने का, स्वयं की साधना को समग्रता से जोड़ देने का होता है। ध्यान से देखें तो हम पाएँगे कि प्रत्येक गायत्री परिजन की जो मूल अभीप्सा है, केंद्रीय खोज है—वो इसी शिखर को प्राप्त करने की है।

वैसे भी प्रत्येक गायत्री परिजन को जब पूज्य गुरुदेव का शिष्य, उनका अनुगामी बनने का अवसर मिला है तो फिर हमारे लिए जीवन का एकमात्र उद्देश्य साधना ही हो जाता है; क्योंकि इसी एक उद्देश्य के लिए पूज्य गुरुदेव ने अपनी जीवनयात्रा को समर्पित किया।

सारांश में कहें तो हमारे लिए साधना के अतिरिक्त अन्य कोई निर्दिष्ट पथ है भी नहीं और उस साधना के पथ पर जो विशिष्टतम पुरुषार्थ एक साधक के द्वारा संपन्न हो सकता है—उसे ही हम अनुष्ठान कहकर के पुकार सकते हैं।

किसी गंभीर, दुष्कर प्रारब्ध कर्म को काटने के लिए हमें सामान्य-से थोड़ी ज्यादा साधनात्मक ऊर्जा लगाने की आवश्यकता होती है और उस विशिष्ट ऊर्जा के उपार्जन के लिए जो पुरुषार्थ हमारे द्वारा संपन्न होता है—वही साधनात्मक अनुष्ठान कहलाता है।

अनुष्ठान के माध्यम से साधक उन कर्मभोगों को काटने की व्यवस्था बनाते हैं, जो आज बीज रूप में उनके कर्माशय में समाहित हैं और यदि समय रहते उनको काटने की, उनका शमन करने की व्यवस्था नहीं बनाई गई तो एक दिन वे कर्मबीज—वृक्ष रूप में परिणत हो सकते हैं। उनके वृक्ष रूप में परिणत होने से तात्पर्य उनका दृश्य रूप में, घटनाक्रमों में बदल जाने से है।

जैसे यदि किसी व्यक्ति के बैंक एकाउंट में 1 करोड़ रुपये हों तो उसे 2 लाख रुपये का व्यवसाय करने में कोई विशेष चिंतन करने की जरूरत नहीं पड़ती, वैसे ही यदि हमारे पास आध्यात्मिक ऊर्जा का संचित भंडार है तो उससे जीवन की यात्रा सुगम हो जाती है।

आध्यात्मिक ऊर्जा के उस भंडार को भरने के लिए किए जाने वाले पुरुषार्थ की तुलना ही नवरात्र-अनुष्ठान से की जा सकती है। नवरात्र-साधना का उद्देश्य ही साधक को साधनात्मक ऊर्जा के संचित भंडार से भर देना है।

जब हम नवरात्र-अनुष्ठान के क्रम को संपन्न करते हैं तो कुछ तथ्यों को गंभीरतापूर्वक समझ लेना जरूरी हो जाता है। पहला, यह कि हम पद्धति क्या अपनाएँ, हमारी प्रक्रिया क्या हो, हमारा तरीका क्या हो ? क्योंकि बाहर के जगत् की प्रगति और विकास क्रम तो स्पष्ट है, परंतु आंतरिक जगत् में ये इतना स्पष्ट न होने के कारण कई बार मन में प्रश्न उभरता है कि क्या करें ? कैसे करें ? क्या साधना करने का तरीका बदलें ? मंत्रजप का तरीका बदलें या फिर स्थान में कोई परिवर्तन करें ?

ऐसे प्रश्नों का मन में उठना स्वाभाविक है, पर इसका उत्तर एक ही है कि ऐसे में हमें तरीके बदलने के बजाय अपनी सोच को बदलने की आवश्यकता है। ऐसा इसलिए; क्योंकि नवरात्र-अनुष्ठान का उद्देश्य करने की जगह बनने से है। ऐसा इनसान बनने से है, जिसको फिर कुछ भी करने पर सफलता मिलनी असंदिग्ध हो जाती है।

जिन लोगों ने भी इतिहास में अपना स्थान बनाया है—उनको कभी ये पूछने की जरूरत ही नहीं पड़ी कि वे क्या करें ? बस ! वे श्रेष्ठ इनसान बनते गए और फिर जो कुछ भी हो करते गए, वो भी श्रेष्ठ होता गया।

संसार का साधारण-सा नियम है कि यदि हम पारस बन जाते हैं तो जो हम छूते हैं, वो भी सोना बन जाता है। अनुष्ठान का प्रथम सूत्र यही है कि करने से ज्यादा बनना हमारी साधना का उद्देश्य होना चाहिए। हम हीरा बन जाते हैं तो जौहरी हमें ढूँढ़ ही लेता है।

हमारा उद्देश्य अपने व्यक्तित्व की गुणवत्ता को बढ़ाना होना चाहिए। खदान में से जो धातुएँ निकलती हैं, वो तो कच्ची होती हैं, पर जब वे परिशोधन की प्रक्रिया से गुजरकर शुद्ध बन जाती हैं तो उनका मूल्य बढ़ जाता है। साधना का उद्देश्य परिशोधन की प्रक्रिया से स्वयं को गुजारकर अपने व्यक्तित्व के मूल्य को बढ़ा लेना है।

सरल शब्दों में कहें तो साधना का उद्देश्य शक्तियों का अर्जन, अपनी गुणवत्ता का अभिवर्द्धन करना है। यहाँ ये याद रखने की बात है कि चाहे हम उद्देश्य कुछ भी रखें, प्रारब्ध कर्म काटने को रखें या गुणवत्ता के अभिवर्द्धन को रखें—ये स्पष्ट रखना जरूरी है कि चीजों को पकने देने के लिए यदि समय जरूरी है तो व्यक्तित्व को परिपक्व होने के लिए भी समय देना जरूरी हो जाता है।

इसीलिए अनुष्ठान-साधना के लिए एक निश्चित समयावधि रखी गई है। इस समय की सीमा को सुनिश्चित करने के पीछे का कारण यह कि दिन-प्रतिदिन के कर्मभोगों को तो नित्य के पूजा क्रम से काट पाना संभव हो जाता है, परंतु एक बड़े कर्मभोग को काटने के लिए एक निर्धारित साधनावधि की आवश्यकता पड़ती है। यह समयावधि कर्म-प्रारब्ध की विशालता के आधार पर नियत की गई है।

इसके बाद मंत्रों को करने का क्रम आता है, जिनको करने के पीछे का विज्ञान घर्षण का विज्ञान है; जिसके माध्यम से एक विशिष्ट ऊर्जा को जन्म देने का क्रम संपन्न किया जाता है।

जैसे जब दो धातुएँ आपस में टकराती हैं तो उनके परस्पर टकराने से चिनगारियाँ निकलती हैं, वैसे ही जब साधक मंत्र का उच्चारण करते हैं तो उनके बोलने के क्रम से एक विशेष ऊर्जा को जन्म मिलता है, जो पूरे शरीर में अंगों, नाड़ियों, तंतुओं के माध्यम से गतिमान हो जाती है और जब यह जाकर विभिन्न अंगों-उपांगों से टकराती है तो प्रभाव निकलकर के आता है ?

मंत्र का प्रभाव इस आधार पर निकलता है कि मंत्रों के संचरण व उनके अंगों से टकराने पर एक तो विस्फोट होता है, जो ऊर्जा के चक्र को जन्म देता है और दूसरा वह एक तप का निर्माण करता है।

ऊर्जा तो इस आधार पर निकलती है कि मंत्र का शब्द जिस अंग से टकराया, उसकी संरचना कैसी है और इस आधार पर यह एक प्राण-ऊर्जा

प्रदान करती है, पर उसकी लयबद्धता, एक विशेष भाव को जन्म देती है, जो उस मंत्र के छंद के कारण आता है।

चूँकि मंत्रों का गठन शब्दों के पुनर्गठन से हुआ है, इसलिए शब्दों की शक्ति उनके विस्फोट से आती है। जैसे बम के फूटने पर धमाका भी होता है और ऊर्जा भी निकलती है, वैसे ही मंत्रों के शब्द ध्वनि भी करते हैं और एक नूतन ऊर्जा को भी जन्म देते हैं।

मंत्र के शब्दों को हम अक्षर कहकर के पुकारते हैं—जिसका अर्थ है अविनाशी, जिसको हम कभी नष्ट नहीं कर सकते। इसीलिए गायत्री मंत्र को कहे हुए कई सहस्राब्दियाँ बीत गईं, पर उसकी ऊर्जा को आप आज भी महसूस कर सकते हैं। इन मंत्राक्षरों का उद्देश्य मानवीय चेतना को झकझोर कर उसे उसके जीवन के उद्देश्य का स्मरण कराना होता है। इस आधार पर किया गया मंत्रजाप विशिष्ट परिणामों को जन्म देने वाला होता है। इस बार की नवरात्र-साधना एक ऐसे ही विशिष्ट उद्देश्य को लेकर के आई है, ताकि इसको करने के साथ ही हम अपने जीवन के उद्देश्य को भी प्राप्त कर सकें और उस संभावना को साकार कर सकें,जो नवरात्र-साधना का मूल आधार कही जा सकती है।❑

मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर रंगून में निर्वासित जीवन बिता रहे थे। उन्हें अभावग्रस्त जीवन जीते देख उनके एक शुभचिंतक ने उनसे पूछा—''आप इतने कष्टों को मौन होकर क्यों सहते हैं? उनका विरोध क्यों नहीं करते?''

बहादुर शाह जफर ने शांत स्वर में उत्तर दिया—''विरोध की क्या आवश्यकता है? जो अपराध मुझसे हुए हैं, मैं उन्हीं का तो प्रायश्चित कर रहा हूँ।'' शुभचिंतक ने पुनः पूछा—''वे क्या अपराध हैं; जो आपसे हुए हैं।''

बहादुर शाह जफर बोले—''मैं एक अखंड राष्ट्र का सम्राट था और उसका अधिपति होने के नाते यह मेरा नैतिक दायित्व था कि मैं उसकी सीमाओं को अक्षुण्ण रखूँ। जब उसे मेरे संरक्षण की आवश्यकता थी, तब मैंने अपने कर्त्तव्य से मुँह मोड़ लिया और आज वह राष्ट्र अँगरेजों के हाथ गिरवी चला गया। दायित्व से मुँह मोड़ लेना ही मेरा वह अपराध है, जिसका प्रायश्चित मैं मरकर भी न कर पाऊँगा।''

थोड़ा रुककर बहादुर शाह जफर उस मित्र से पुनः बोले—''यदि कुछ कर सको तो इतना करना कि मेरी कब्र यहीं बनाना। जीते जी जिस राष्ट्र की मैं रक्षा न कर सका, उस राष्ट्र में मृत्यु उपरांत जाना भी शोभा का विषय न होगा।'' जीवन हर व्यक्ति को अवसर प्रदान करता है—अपने कर्त्तव्यों का पालन करने वाले सौभाग्य के अधिकारी बनते हैं और विमुख होने वाले पश्चात्ताप के।

शक्ति उद्घोष

हम राष्ट्र के युवा हैं—भरी हमारे हाथों में वह स्याही।
लिख सकते हैं हम तकदीर राष्ट्र की—संकल्पित, मनचाही॥

जब भी सृजन हुआ है नया—हमीं ने उसकी नींव भरी है।
कोई भी अधगिरी दिवार—हमारी ठोकर से बिखरी है॥
जब-जब बढ़ी जहाँ दुष्टता—मचादी हमने वहाँ तबाही॥

निर्धनता की तमसा में—लक्ष्मी की चमक प्रतिष्ठित की है।
दिखी अशिक्षा—वहीं मनों में सरस्वती प्रतिबिंबित की है॥
पहना 'मौर' चढ़े घोड़ी तो—कब समृद्धि छोड़ी अनब्याही॥

परिवर्तन भी बड़े-बड़े—वैचारिक जग में हैं हम लाए।
बदले शासनतंत्र—संस्कृति के भी शुभ संस्कार कराए॥
धर्मों का शृंगार किया—हर विग्रह की स्थिति अवगाही॥

हम से ही रहती संतुष्ट, पुष्ट—यह परिवारों की दुनिया।
बाबा सेवा चाहें—पट्टी - बत्ती मँगवाती है मुनिया॥
पत्नी भी है सहयोगिनि—हैं उसके कर्मठ हाथ गवाही॥

लेते जाओ नाम हमीं—मनु, परशुराम, लक्ष्मण व भरत हैं।
कृष्ण-कन्हैया भी अर्जुन भी—ग्वाले गौ चारण में रत हैं॥
पड़ी जरूरत तो ले आए गंगा—बन हिमगिरि के राही॥

पीछे की छोड़ो—अब भी था नाम शिवाजी, वन-वन डोले।
लक्ष्मीबाई, भगतसिंह—बंधान गुलामी के थे खोले॥
क्या कहने सुभाष के—जग में था जवाब वह खुद अपना ही॥

आज लिया संकल्प—देव संस्कृति की जग में गंध भरेंगे।
उसके लिए प्रशिक्षित पहले—भारत का हर व्यक्ति करेंगे॥
रहा 'जगद्गुरु' कभी देश यह—लाएँगे वर्चस् वैसा ही॥

—माया वर्मा

अखिल विश्व गायत्री परिवार मुख्यालय, शांतिकुंज हरिद्वार में
गायत्री परिवार से संबद्ध महिला एवं पुरुष वर्ग का राष्ट्रीय सक्रिय कार्यकर्त्ता शिविर सफलतापूर्वक संपन्न

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01.02.2023
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

रायपुर (छत्तीसगढ़) में नारी सशक्तीकरण चेतना शिविर अभूतपूर्व उत्साह एवं नवीन संकल्पों के साथ संपन्न

भिलाई (छत्तीसगढ़) में अश्वमेध यज्ञ रजत जयंती महोत्सव एवं 108 कुंडीय गायत्री महायज्ञ का अभूतपूर्व आयोजन

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 **मोबाइल** - 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org